संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १८१
जनवरी २००८

तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरुपासतेऽमृतम् ।
ज्योतियों में परम ज्योति उस
आत्मा की देवगण उपासना करते हैं ।

सहस्रार चक्र
(चोटी के पास)

आज्ञा चक्र
(भ्रूमध्य में)

विशुद्धाख्य चक्र
(कंठ में)

अनाहत चक्र
(हृदय में)

मणिपुर चक्र
(नाभि में)

स्वाधिष्ठान चक्र
(नाभि के नीचे)
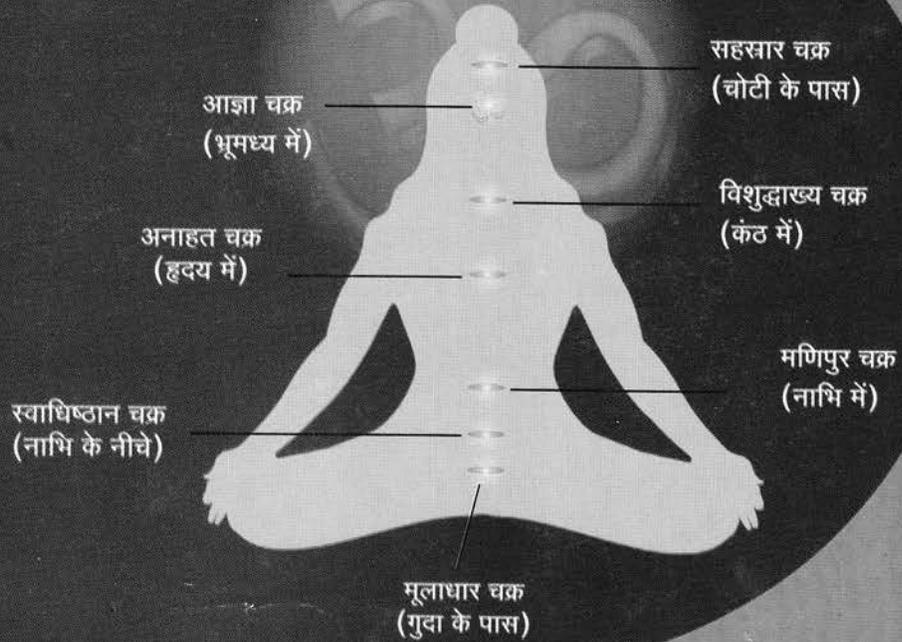
मूलाधार चक्र
(गुदा के पास)

आंतर ज्योत

सप्तचक्रों के ध्यान के लाभ

शरीर में आध्यात्मिक शक्तियों के सात केन्द्र हैं जिन्हें 'चक्र' कहा जाता है। ये चक्र चर्मचक्षुओं से नहीं दिखते क्योंकि ये हमारे सूक्ष्म शरीर में होते हैं। फिर भी स्थूल शरीर के ज्ञानतंतुओं-स्नायुकेन्द्रों के साथ समानता स्थापित करके इनका निर्देश किया जाता है। इन चक्रों का ध्यान करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं।

१. मूलाधार चक्र :

इस चक्र का ध्यान धरनेवाला साधक अत्यन्त तेजस्वी बन जाता है। उसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है और वह निरोगता प्राप्त करता है। पटुता, सर्वज्ञता और सरलता उसका स्वभाव बन जाता है।

२. स्वाधिष्ठान चक्र :

इस चक्र का ध्यान करनेवाला साधक सारे रोगों से मुक्त होकर संसार में सुख से विचरण करता है। वह मृत्यु पर विजय पाता है। उसके शरीर में वायु संचरित होकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती है।

३. मणिपुर चक्र :

इसके ध्यान से साधक के समस्त दुःखों की निवृत्ति होती है और उसके सारे मनोरथ सिद्ध होते हैं। वह काल पर विजय पा लेता है अर्थात् काल को भी चकमा दे सकता है। जैसे - योगी चाँगदेवजी ने काल की वंचना कर चौदह सौ वर्ष तक आयुष्य भोगा था।

४. अनाहत चक्र :

इसके ध्यान से अपूर्व ज्ञान व त्रिकालदर्शिता प्राप्त होती है। स्वेच्छा से आकाशगमन करने की सिद्धि मिलती है। देवताओं व योगियों के दर्शन होते हैं।

५. विशुद्धाख्य चक्र :

इसके ध्यान से चारों वेद रहस्यसहित समुद्र के रत्नवत् प्रकाश देते हैं। इस चक्र में अगर मन लय हो जाय तो मन-प्राण अन्तर में रमण करने लगते हैं। शरीर वज्र से भी कठोर हो जाता है।

६. आज्ञा चक्र :

आज्ञा चक्र में ध्यान करते समय जिह्वा ऊर्ध्वमुखी (तालु की ओर) रखनी चाहिए। इससे सर्व पातकों का नाश होता है। उपरोक्त सभी पाँचों चक्रों के ध्यान का समस्त फल इस चक्र का ध्यान करने से प्राप्त हो जाते हैं। वासना के बंधन से मुक्ति मिलती है।

७. सहस्रार चक्र :

इस सहस्रदल पद्म में स्थित ब्रह्मरंध्र का ध्यान धरने से परम गति अर्थात् 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है।

ऋषि प्रसाद
मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १८१
जनवरी २००८ मूल्य : रु. ६-००
पौष-माघ. वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक
भारत में	७०
नेपाल, भूटान व पाक में	९०
अन्य देशों में	US $ 20

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

अनुक्रम

जिसके बिना जीवन अधूरा...

- पूज्य बापूजी

चित्त की विश्रांति से सामर्थ्य प्रकट होता है और सामर्थ्य का सदुपयोग करने से निर्भयता आती है । चित्त की विश्रांति प्रभुरस को प्रकट करनेवाली कुंजी है । चित्त की विश्रांति प्रसाद की जननी है । विश्रांति साधन ब्रह्मज्ञान कराने में समर्थ है । जैसे - काम करते-करते थक जाते हैं फिर आराम करते हैं तो काम करने की शक्ति संचित होती है । बोलते-बोलते थक जाते हैं फिर नहीं बोलते तो बोलने की शक्ति संचित होती है । दिन भर परिश्रम करते हैं, अपनी ऊर्जा खर्च होती है और रात को कुछ नहीं करते - सो जाते हैं तो दूसरे दिन काम करने की ऊर्जा संचित होती है । यह सबके अनुभव की बात है ।

अभी अपराधियों से पूछताछ करनेवालों ने एक नया तरीका खोज लिया है । पहले तो अपराधी को मार-पीटकर सच्ची बात उगलवाते थे । अब अपराधी को रात को सोने नहीं देते तो वह इतना विह्वल हो जाता है कि कोई भी गोपनीय बात छुपा नहीं सकता । सच्ची बात बोलकर वह जान छुड़ा लेता है तो मानना पड़ेगा कि अपराधी व्यक्ति को भी आराम चाहिए ।

आराम तीन प्रकार का होता है : स्थूल आराम, सूक्ष्म आराम और वास्तविक आराम ।

स्थूल आराम : काम करके थके हैं और नींद आयी, यह स्थूल आराम है ।

सूक्ष्म आराम : कर्म ऐसे सुन्दर, सुहावने मंगलकारी करें कि हृदय में संतोष मिले । आपको भूख लगी है, भोजन की थाली तैयार है परंतु आपने देखा कि कोई व्यक्ति है जो अपने से भी ज्यादा भूखा या दुखियारा है । यदि खुद को थोड़ा भूखा रखकर भी आपने उसको खिला दिया तो उसको तो भूख की पीड़ा से आराम मिलेगा परंतु आपको सूक्ष्म आराम मिलेगा, अंतरात्मा का संतोष मिलेगा । ऐसे ही माता-पिता व मित्रों के काम आ गये, संस्कृति व धर्म के काम आ गये तो उसमें स्थूल आराम तो नहीं होता, कठोर परिश्रम होता है । जैसे गुरु गोविन्दसिंहजी के बेटे दीवाल में चुने जा रहे थे, उनका स्थूल आराम तो तबाह हो रहा था, मौत आ रही थी लेकिन उन्हें आत्मसंतोष हो रहा था कि अपने धर्म के लिए दीवाल में चुने जा रहे हैं। बहू कैसी भी हो, सास उसे बेटी समझकर बड़ा दिल रख के उससे व्यवहार करती है, 'बहू मेरे साथ बुरा व्यवहार करती है किंतु मैं तो बुरा व्यवहार नहीं करूँगी । उसकी गति वह जाने ।'- ऐसा सोचती है अथवा बहू सास की सब बातें सहन कर लेती है और अपनी तरफ से सास के साथ मंगलमय व्यवहार करती है तो उनको एक प्रकार का आत्मसंतोष का आराम मिलता है ।

लालबहादुर शास्त्री, मोरारजीभाई देसाई जैसे कोई नेता जिन्होंने अपने क्षेत्र में कार्य किया हो, उन्हें चुनाव में हारने पर भी इस प्रकार का आत्मसंतोष होता है कि 'चलो भाई ! हम तीन बार जीते, चौथी बार हार गये अथवा कभी मंत्री नहीं बने तो भी कोई बात नहीं, हमने अपने इलाके के लोगों की सेवा की है ।' लेकिन इससे जीवात्मा का परम कल्याण नहीं होता । वह तो होता है वास्तविक आराम पाने से ही ।

वास्तविक आराम : चतुर्मास में देवशयनी एकादशी से देवउठी एकादशी तक भगवान नारायण

क्षीरसागर में लेटे-लेटे वास्तविक आराम पाते हैं और उनके संकल्प के प्रभाव से सृष्टि चलती है। आप रात्रि को निद्रा में आराम पाते हैं और सुबह प्रभातकाल में जो निर्णय करते हैं वे अच्छे होते हैं तथा झंझटों से बचानेवाले होते हैं। रात्रि की निद्रा को अगर आप योगनिद्रा बनाने में सक्षम हो जायें तो स्थूल आराम के साथ सूक्ष्म आराम और सूक्ष्म आराम के साथ वास्तविक आराम तक आप पहुँच सकते हैं। वास्तविक आराम पाने के लिए ही मनुष्य-जन्म मिला है। नींद तो भैंसा भी कर लेता है, पक्षी भी अपने घोंसलों में आराम कर लेते हैं। हर जीव को निद्रा चाहिए और वह कर लेता है। स्थूल आराम करना कोई बड़ी बात नहीं है। सूक्ष्म आराम करना कुछ-कुछ अच्छाई है किंतु जिसने वास्तविक आराम पा लिया उसने अपना और अपनी सात पीढ़ियों का वास्तविक कल्याण कर लिया।

दुनिया के तमाम श्रेष्ठ ग्रंथों व विश्व-साहित्य में सबका मंगल चाहनेवाले सर्वोपरि ग्रंथ हैं चार वेद। वेद कहते हैं :

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष`ँ शान्तिः
पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्व`ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

'स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक हमें शांति प्रदान करें। जल शांतिप्रदायक हो, औषधियाँ तथा वनस्पतियाँ शांति प्रदान करनेवाली हों। सभी देवगण शांति प्रदान करें। सर्वव्यापी परमात्मा सम्पूर्ण जगत में शांति स्थापित करें। शांति भी हमें परम शांति प्रदान करे।'

(यजुर्वेद : ३६.१७)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'सभी सुखी हों, सभी नीरोगी रहें, सभी सबका मंगल देखें और किसीको भी किसी दुःख की प्राप्ति न हो।'

पशुओं को, पक्षियों को, पेड़-पौधों को भी सुख-शांति मिले। सबको सुख-शांति व वास्तविक आराम मिले।

वास्तविक आराम के बिना जो कुछ मिलेगा वह एक दिन छीना जायेगा। आज तक जो आपने जाना है, पाया है और आज के बाद जो जानोगे, पाओगे वह सब मृत्यु के एक झटके में छूट जायेगा लेकिन जो वास्तविक तत्त्व है उसको एक बार जान लो या पा लो तो मौत का बाप और तैंतीस करोड़ देवता व भगवान नारायण मिलकर भी उसे छीन नहीं सकते। भगवान नारायण सहित सब देवता मिलें और देवताओं तथा भगवान नारायण का आधारस्वरूप आत्मा (वास्तविक आराम) नहीं मिला तो जीवन अधूरा है। उर्वशी अप्सरा को ठुकराने की ताकत रखनेवाले अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण मिले, फिर भी उसका रुदन चालू था। १६,००० राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में विवाह सम्पन्न करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अपने उतने ही रूप बना लिये और उतने ही रूप गर्गाचार्यजी के भी बना दिये थे। ऐसे समर्थ श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं, ऐसे अर्जुन को भी जब तक वास्तविक तत्त्व का ज्ञान नहीं मिला तब तक उसके सर्व दुःखों की निवृत्ति नहीं हुई और जब वास्तविक तत्त्व का ज्ञान हुआ, वास्तविक आराम मिला तो वही अर्जुन कहता है :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा...

'मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।' (गीता : १८.७३) अर्थात् अपने शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त आत्मस्वभाव की स्मृति।

आपकी पत्नी राजी हो गयी, पति राजी हो गया, बॉस राजी हो गया, लोगों ने तालियाँ बजाकर आपका 'वोट बैंक' पक्का कर दिया तो भी आप

पूरे निश्चिंत नहीं हो सकते। कुछ भी मिल जाय फिर भी सारे दुःखों की निवृत्ति और पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। मदालसा रानी ने अपने चारों बेटों को वास्तविक आराम दिला के ब्रह्मज्ञानी बना दिया। 'गुरुवाणी' में आता है :

पूरा प्रभु आराधिआ
पूरा जा का नाउ।
नानक पूरा पाइआ
पूरे के गुन गाउ॥

जिस मनुष्य ने अटल नामवाले पूर्ण प्रभु का स्मरण करके आत्मारामी सद्गुरुओं की कृपाप्रसादी को पचाया है, उसे पूर्ण प्रभु मिल गया है। पूर्णपुरुषों से पूर्ण स्वरूप का ज्ञान पाकर, अपनी पूर्णता की अनुभूति करानेवाले साधन को समझकर सजाग हो जाना चाहिए, अपनी पूर्णता का अनुभव करना चाहिए।

पूर्ण परमात्मा की आराधना करके उसमें शांत होना सीखो, सम होना सीखो तो आपका परम मंगल हो जायेगा, परम कल्याण हो जायेगा। ❒

पंचगव्य सेवन का मंत्र

निम्न मंत्र के तीन बार उच्चारण के पश्चात् खाली पेट पंचगव्य का सेवन करना चाहिए।

यत् त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पंचगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम्॥

'त्वचा, मज्जा, मेधा, रक्त और हड्डियों तक जो पाप मुझमें प्रविष्ट हो गये हैं, वे सब मेरे इस पंचगव्य के प्राशन करने से वैसे ही नष्ट हो जायें, जैसे प्रज्वलित अग्नि में सूखी लकड़ी डालने पर भस्म हो जाती है।' **(महाभारत)**

मिथ्या में मिथ्या

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

एक संत से किसीने पूछा : ''महाराज ! आप कहाँ से आये ?''

संत बोले : ''हम रशिया से आ रहे हैं।''

''रशिया कैसा लगा ?''

''ठीक है।''

दूसरा आदमी आया : ''आप कहाँ से आये बाबाजी ?''

''अमेरिका से आया हूँ।''

तीसरा आदमी : ''महाराज ! आप कहाँ से आये ?''

''मैं मेरठ से आ रहा हूँ।''

चौथे ने पूछा : ''बाबाजी ! आप कहाँ से आये ?''

''हरिद्वार से।''

तो जो पहला आदमी बैठा था वह बोला : ''बाबाजी ! आपने इतना मिथ्या भाषण किया !''

संत बोले : ''हमने मिथ्या भाषण नहीं किया, मिथ्या में मिथ्या मिलाया। हम तो व्यापक ब्रह्मरूप हैं। लोग हम पर मिथ्या आरोप करते हैं कि कहाँ से आये ? ये पाँच भूत भी मिथ्या हैं, बदलनेवाले हैं और रशिया भी बदलता है, हिंदुस्तान भी बदलता है, शरीर भी बदलता है। जो बदलता है वह मिथ्या। बस ! हमने मिथ्या में मिथ्या मिला दिया- रशिया, अमेरिका, हरिद्वार, मेरठ। हम कहीं से आते नहीं, कहीं जाते नहीं। आता-जाता है यह मिथ्या शरीर। मैं सच्चिदानंद हूँ; जो सत् है, चित् है, आनंदस्वरूप है। इस मिथ्या, असत्, जड़, दुःखरूप शरीर से पूछते हैं कि आप कहाँ से आये, कहाँ गये थे ? मिथ्या पूछ रहे हैं तो हमने मिथ्या में मिथ्या मिला दिया !''

महात्माओं की कैसी अनोखी रीत होती है ऊँची बात समझाने की ! सत् उसे कहते हैं जो तीनों काल में एकरस है। असत् उसे कहते हैं जो तीनों काल में न हो। मिथ्या उसे कहते हैं जो पहले न हो, बाद में न रहे, केवल बीच में दिखे। परमात्मा पहले थे, अभी हैं, बाद में रहेंगे इसलिए वे सत् हैं। तुम भी आत्मरूप से सत्, चित्, आनंदस्वरूप हो उसे जानो। ❒

माँग और रुचि

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक होती है माँग, दूसरी होती है रुचि। मुझे यह कपड़ा मिले, मुझे ऐसे ही गहने मिलें, ऐसी ही पत्नी मिले, ऐसा लड़का मिले, ऐसा मकान मिले- यह है रुचि। रुचि हो गयी कि मेरी शादी हो जाय। शादी की माँग नहीं है, माँग सुख की है। अगर शादी से सुख नहीं मिलता तो पति-पत्नी लड़ते-झगड़ते भी हैं।

लोग बोलते हैं हमारी रुचि मिटती नहीं है, वास्तव में रुचि सदा टिकती नहीं। बचपन के खिलौनों की रुचि टिकी क्या ? गुड्डे-गुड़ियों में रुचि थी, टिकी क्या ? दो-पाँच साल पहले जिस वस्तु में रुचि थी, अभी वैसी है क्या ?

रुचि बदलती रहती है किंतु माँग ज्यों-की-त्यों रहती है क्योंकि जीवात्मा अमर है, शाश्वत है और परमात्मा भी अमर है, शाश्वत है। शाश्वत जीवात्मा की गहराई में शाश्वत, सुखस्वरूप परमात्मा की माँग है। भले वह माँग को 'परमात्मा' के नाम से नहीं जाने परंतु चाहता परमात्मा को ही है। जब तक परमात्मा नहीं मिला तब तक चाहे धरती का पूरा राज्य मिल जाय, सारे लोग प्रशंसा करनेवाले मिल जायें, उसमें आप समय बरबाद कर सकते हो लेकिन माँग को पूरा नहीं कर सकते और चाहे सारे लोग आपके विरुद्ध हो जायें, खाने को ठीकरे में रोटी मिल जाय किंतु ब्रह्मज्ञानी गुरु का सत्संग मिलता है तो आपकी माँग पूरी हो जायेगी, आप पूर्णपुरुष परमात्मा को पा लोगे। 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में लिखा है कि 'चाण्डाल के घर की भिक्षा ठीकरे में लेकर एक समय खाने को मिले और ब्रह्मज्ञानी गुरु का सत्संग, सान्निध्य मिलता रहे तो वह स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।' अन्य ऐश्वर्य भोगनेवाला राजा तो भोगने के बाद नरकों में पड़ेगा लेकिन अपनी माँग पूरी करनेवाला परमात्म-पद को पायेगा।

***

सबल सहारा

आपके जीवन में सबल सहारे की जरूरत है, बिल्कुल जरूरत है। पैसों की इतनी जरूरत नहीं, पत्नी-पति की इतनी जरूरत नहीं, कुर्सी की इतनी जरूरत नहीं है। बिना कुर्सी के आप जी सकते हैं, पति बिना पत्नी के जी सकता है। भाईसाहब ! आपके जीवन में जरूरत है सबल सहारे की। **ऐसा सबल सहारा चाहिए, जो आपको दुःखों के समय थाम ले और सुखों की आसक्ति में डूबने से बचा ले, जो आपको सत्प्रेरणा देने में समर्थ हो।** आप अच्छा करते हो तो आपका बल बढ़ा दे, आप बुरा करते हो या गलती करते हो तो आपके दिल में आपको टोकने की ताकत रखे, ऐसे सबल सहारे की सबको जरूरत है। जिसको जरूरत नहीं लगती है, उसको भी जरूरत है, पक्की बात है ! ऐसा कौन-सा सबल सहारा है ?

अपने बॉस का सहारा लेनेवाला ऑफिस में मस्ती से रहता है। सेठ का सहारा लेने से नौकर खुशहाल रहता है। नेता का सहारा लेने से चमचों में दम आ जाता है लेकिन वह नेता की कुर्सी और सेठ का धन कब तक ? प्रलय हो जाय फिर भी जो सहारा आपसे छूटे नहीं, उस सहारे का नाम है परमात्मा और वह आत्मरूप में सदैव हमारे साथ है। ❒

कर लो सभीसे स्नेह जगत में कोई नहीं पराया है

- पूज्य बापूजी

जब हम दूसरे को बोलते हैं, 'तेरा यह कर्तव्य है' तब उसका मतलब होता है, 'तू मेरा पिट्ठू बन जा, मेरे काम आ जा।' सुबह होते ही घर में सब एक-दूसरे के शोषक इकट्ठे हो जाते हैं कि 'बाप मेरे अनुकूल हो जाय, बेटा मेरे अनुकूल हो जाय, माँ मेरे अनुकूल हो जाय, पड़ोसी मेरे अनुकूल हो जाय...।' जनमानस जब सबको अपने अनुकूल करके, अहं को पोषित करके सुखी होने में लग पड़ता है तो घर में, समाज में विद्रोह पैदा होता है, आतंक पैदा होता है, अशांति पैदा होती है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

'सभी सुखी हों, सभी नीरोगी रहें, सभी सबका मंगल देखें और किसी को भी किसी दुःख की प्राप्ति न हो।'

परंतु इस सिद्धान्त पर आ जायें तो अशांति देखने को नहीं मिलेगी।

क्या आप अपनी उँगली खराब देखना चाहते हो या आँख खराब देखना चाहते हो ? क्या पैर खराब करना चाहते हो या पेट खराब देखना चाहते हो ? जैसे आपका पूरा शरीर स्वस्थ हो तब आप स्वस्थ हैं, ऐसे ही 'सभीके मंगल में मेरा मंगल है, सभीके स्वास्थ्य में मेरा स्वास्थ्य है, सभीकी प्रसन्नता में मेरी प्रसन्नता है।' - ऐसा एक-दूसरे के लिए सोचने लग जायें तो बुरे, क्रूर व्यक्तियों का भी मंगल हो जायेगा। जब हम उनको क्रूरता से देखेंगे और वे हमको क्रूरता से देखेंगे तो मंगल नहीं हो सकता, अमंगल ही बढ़ेगा। आतंक से आतंक को मिटायेंगे तो आतंक बना ही रहेगा मिटेगा नहीं, क्या ख्याल है !

बहू देखती है कि सास को टोटे चबवाऊँगी तो यह ठीक नहीं है। जो आपके प्रतिकूल है उसको टोटे चबवाने का मत सोचो, उसको खीर-खाँड खिलाने का सोचो तो आपके पास खीर-खाँड रहेगा।

शक्कर खिला शक्कर मिले, टक्कर खिला टक्कर मिले।
नेकी का बदला नेक है, बदों को बदी देख ले ॥
इसे तू दुनिया मत समझ, यह सागर की मँझधार है।
औरों का बेड़ा पार कर, तो तेरा बेड़ा पार है ॥

Every action creates a reaction.

इसलिए अपना भला चाहते हो तो दूसरों की भलाई कर लो, स्वास्थ्य चाहते हो तो स्वास्थ्य बाँटो, यश चाहते हो तो दूसरों को यश बाँटो, आप अमानी रहकर दूसरों को मान दो।

गुलाब गुलाबी क्यों है ? क्योंकि उसने गुलाबी रंग दिया है। तुलसी हरी क्यों है ? क्योंकि उसने हरा रंग दिया है। आप जो देते हो वही कई गुना होकर आपके पास आ जाता है। **इसलिए आज यह पक्का करो कि अपनेको जो अच्छा नहीं लगता वैसा व्यवहार दूसरों से नहीं करेंगे।**

मेरे से कोई ठगी करे- यह मुझे अच्छा नहीं लगता तो मुझे किसीसे ठगी नहीं करनी चाहिए। मेरा कोई अपमान करे तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा तो मैं किसीका अपमान क्यों करूँगा ? मेरे को कोई धोखा दे, यह मुझे अच्छा लगेगा क्या ? तो मुझे किसीको धोखा नहीं देना चाहिए। मेरा मंगल हो ऐसा मैं चाहता हूँ तो मुझे ऐसा सोचना चाहिए

कि सबका मंगल हो।

आप जो अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए करो क्योंकि आप केवल इस शरीर में नहीं हैं। मन, बुद्धियाँ भिन्न हैं पर सभीकी गहराई में आप ही चैतन्यरूप से विद्यमान हैं। एकत्व के ज्ञान से सुख-शांति बढ़ती है। एकत्व होते हुए भी अनेकत्व दिखे, यह उस कलाकार की सुन्दर व्यवस्था है ताकि सब एक-दूसरे के काम आयें। स्त्री और पुरुष की अगर भिन्नता न होती तो वे एक-दूसरे के काम नहीं आते और सृष्टि नहीं हो सकती थी लेकिन भिन्नता होते हुए अभिन्नता में स्नेह भी तो होता है। ग्राहक की अपनी आवश्यकता है तो माल बेचनेवाले की अपनी आवश्यकता है। ग्राहक और माल बेचनेवाला भीतर से एक-दूसरे को हित की भावनाएँ दें तो वहाँ स्वर्ग बन जायेगा परंतु दुकानदार सोचता है कि ग्राहक अंधा हो जाय ताकि मैं उसे लूट लूँ। ग्राहक सोचता है दुकानदार भले भूखा मरे, मुझे सामान सस्ता मिले। नौकर चाहता है कि बिना मेहनत के पगार मिल जाय और पगार देनेवाला सोचता है कि कम पगार में इसका खून चूस लूँ। इसलिए अशांति और शोषण बढ़ता है। अहं को पोषना और दूसरे को शोषना, यह अशांति का फल है। अहं को विसर्जित करके आत्मभाव से सभीका मंगल चाहो तो अपना भी मंगल हो जाता है। इसलिए बहू है तो अपना कर्तव्य निभा बेटी ! 'सास ऐसा करती है - वैसा करती है...'- ऐसी फरियाद मत कर। ननद है तो भाभी के साथ सज्जनता का व्यवहार कर, भाभी है तो ननद के साथ सज्जनता का व्यवहार कर, देवरानी है तो जेठानी के साथ सज्जनता का व्यवहार कर। 'अरे, मेरी बहू तो ऐसी है, मांस खाती है; मेरी जेठानी तो ऐसी है, यह करती है...'- ऐसा मत सोच। 'उसकी वह जाने, मैं तो उसमें मेरे प्रभु हैं ऐसा समझकर अच्छा व्यवहार करूँगी।'- ऐसा संकल्प कर। फिर देख, देर-सवेर तेरा प्रभु तुझ पर प्रसन्न हो जायेगा।

औगुण चित न धरौ।

भगवान श्रीकृष्ण तो गंदे, रोगी, कुरूप कुत्ते में भी उसके चमकते दाँतों की ओर दृष्टि रखते हैं। श्रीकृष्ण का कैसा नजरिया है ! बहूरानी ! तुम्हारी सास के दाँत नहीं चमकते होंगे ठीक है, हम मान गये; चेहरा नहीं चमकता होगा, हम मान गये लेकिन वह तुम्हारे पति की माँ बनी है **यह चमक तो उसके पास आजीवन रहेगी, ऐसा समझकर सास का आदर करियो बेटी !** सास का अपमान मत करियो, सास को तुच्छ मत मानियो, माँ को तुच्छ मत मानियो, बेटी को तुच्छ मत मानियो। बेटी ऐसी है, वैसी है... उसके सद्गुण भले कुछ न चमकते हों पर तेरी बेटी होने का उसका पुण्य तो चमकता है न ! ऐसे ही तेरी माँ होने का, तेरा भाई होने का, तेरा पड़ोसी होने का उसका पुण्य तो चमकता है ! तू तो गुण देख ले, अवगुण देखकर काहे को अपना दिल खराब करो ? बुरा आदमी सदा बुरा नहीं होता, भला आदमी सदा भला नहीं होता। व्यक्ति में कब भलाई का अंश विकसित हो और कब बुराई का, कहना मुश्किल है। **इसलिए हम दूसरों में बुराई देखकर अपना बुराई का अंश क्यों विकसित करें ?** भलाई देखते-देखते भलाई के अंश को ऐसा विकसित करो कि बुराई अपने-आप शांत हो जाय। दीया जलाओ तो अँधेरे से लड़ाई करने की जरूरत ही नहीं है भैया ! लाला-लालियाँ ! ज्ञान का दीया जला लो बिटिया ! काहे को दुःखी होना ? हमारे शिक्षक बड़े खराब हैं... नहीं-नहीं। हमारे फलाने बड़े अच्छे हैं... बड़े अच्छे हैं तब भी ठीक है, खराब हैं तब भी ठीक है। अच्छे और खराब तो बाहर से दिखते हैं परंतु गहराई में तो सभीमें हमारे प्रभुजी हैं। **(शेष पृष्ठ २६ पर)**

श्री योगवासिष्ठ अमृतबिन्दु

* जैसे संसार में पृथ्वी, जल आदि महाभूत सृष्टि और प्रलय के बिना छोटे-मोटे कारणों से वृद्धि तथा क्षयरूप विकार को प्राप्त नहीं होते, वैसे ही सत्पुरुष भी छोटे-मोटे कारणों से क्रोध, विषाद और हर्ष के वशीभूत नहीं होते ।

* प्रयत्न-परायणता को सत्शास्त्रों के अभ्यास, संत-महात्माओं और विद्वानों की सेवा द्वारा आत्मज्ञानरूप फलप्राप्ति से सफल बनाना चाहिए ।

* यदि पौरुष (पुरुषार्थ) का अवलम्बन लिया जाय तो वह अवश्य दैव (प्रारब्ध) को जीत लेता है, इस प्रकार दैव और पौरुष के बलाबल के विचार से शम, दम आदि भव्य साधनों से सम्पन्न एवं श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा में नित्य संलग्न अधिकारी पुरुषों को श्रवण, मनन आदि द्वारा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्यम करना चाहिए । अधिकारी जीव का इस जन्म में सम्पादन करने योग्य सहज पौरुष ही परम पुरुषार्थ-लाभ का हेतु है, ऐसा निश्चय कर सदा आनंदमग्न सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मवेत्ताओं की शुश्रूषारूप अमोघ, मधुर, उत्तम औषधि से विविध जन्म-मरण परम्परारूप भवरोग को शांत करें ।

* श्री वसिष्ठजी ने कहा : हे रामजी ! रोगरहित, स्वल्प मानसिक पीड़ा से युक्त देह को प्राप्तकर आत्मा में इस प्रकार चित्त की एकाग्रता करे कि जिससे फिर जन्म ही न हो।

* जो लोग उद्यम का परित्याग कर दैव (भाग्य) पर निर्भर रहते हैं, वे आत्मशत्रु अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का विनाश करते हैं।

* लोक में लौकिक या वैदिक फल के लिए जहाँ जैसे-जैसे पुरुष-प्रयत्न की आवश्यकता होती है, वहाँ वैसे ही पुरुष-प्रयत्न के उपयोग से फल की सिद्धि होती है ।

कहीं पर दो-दो प्रयत्न प्रधान रहते हैं, कहीं पर तीन प्रयत्न प्रधान रहते हैं, इस प्रकार सब जगह पौरुष ही देखा जाता है, दैव तो कहीं देखा नहीं गया ।

* हे रामजी ! पुरुष-प्रयत्न से ही बृहस्पति देवताओं के गुरु बने और पुरुषार्थ से ही शुक्राचार्य ने दैत्यराजों का गुरुत्व पद प्राप्त किया था। दीनता, दरिद्रता आदि दुःखों से पीड़ित हुए अनेक महापुरुष अपने पौरुष से (प्रयत्न से) ही महेन्द्र के सदृश ऐश्वर्यशाली हो गये हैं। हरिश्चन्द्र, नल, युधिष्ठिर आदि का इतिहास इस बात का साक्षी है ।

* हे रामजी ! शास्त्राभ्यास, गुरु-उपदेश और अपना परिश्रम - इन तीनों से ही पुरुषार्थ की सिद्धि देखी जाती है। लौकिक पुरुषार्थ अपने परिश्रम से ही सिद्ध होते हैं। यज्ञ, याग आदि अपने परिश्रम और शास्त्र की सहायता से सिद्ध होते हैं तथा ज्ञान अपने परिश्रम, शास्त्र की सहायता एवं गुरु के उपदेश से सिद्ध होता है। इस प्रकार की तीन सिद्धियाँ पुरुषार्थ से ही देखी जाती हैं ।

* पौरुष से पुरुषों को अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं और पौरुष से बुद्धिमान जनों के पराक्रम की वृद्धि होती है । दैव तो दुःखसागर में डूबे हुए दुर्बल चित्तवाले लोगों के आँसू पोंछनामात्र है और कुछ नहीं है । भाव यह कि दुःखी लोगों को समझाने-बुझाने और ढाढ़स बँधाने के लिए लोग दैव-दैव पुकारते हैं ।

पौरुष से ही बुद्धिमान पुरुष बड़े भीषण संकटों को बात-ही-बात में पार कर जाते हैं । ❐

तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक संत के पास बहरा आदमी सत्संग सुनने आता था। उसे कान तो थे पर वे नाड़ियों से जुड़े नहीं थे। एकदम बहरा, एक शब्द भी सुन नहीं सकता था। किसीने संतश्री से कहा :

''बाबाजी ! वे जो वृद्ध बैठे हैं, वे कथा सुनते-सुनते हँसते तो हैं पर हैं बहरे।''

बहरे मुख्यतः दो बार हँसते हैं - एक तो कथा सुनते-सुनते जब सभी हँसते हैं तब और दूसरा, अनुमान करके बात समझते हैं तब अकेले हँसते हैं।

बाबाजी ने कहा : ''जब बहरा है तो कथा सुनने क्यों आता है ? रोज एकदम समय पर पहुँच जाता है। चालू कथा से उठकर चला जाय ऐसा भी नहीं है, घंटों बैठा रहता है।''

बाबाजी सोचने लगे, 'बहरा होगा तो कथा सुनता नहीं होगा और कथा नहीं सुनता होगा तो रस नहीं आता होगा। रस नहीं आता होगा तो यहाँ बैठना भी नहीं चाहिए, उठकर चले जाना चाहिए। यह जाता भी नहीं है।'

बाबाजी ने उस वृद्ध को बुलाया और उसके कान के पास ऊँची आवाज में कहा : ''कथा सुनायी पड़ती है ?''

उसने कहा : ''क्या बोले महाराज ?''

बाबाजी ने आवाज और ऊँची करके पूछा : ''मैं जो कहता हूँ, क्या वह सुनायी पड़ता है ?''

उसने कहा : ''कहाँ जाऊँ ?''

बाबाजी समझ गये कि यह नितांत बहरा है। बाबाजी ने सेवक से कागज-कलम मँगाया और लिखकर पूछा।

वृद्ध ने कहा : ''मेरे कान पूरी तरह से खराब हैं। मैं एक भी शब्द नहीं सुन सकता हूँ।''

कागज-कलम से प्रश्नोत्तर शुरू हो गया।

''फिर तुम सत्संग में क्यों आते हो ?''

''बाबाजी ! सुन तो नहीं सकता हूँ लेकिन यह तो समझता हूँ कि ईश्वरप्राप्त महापुरुष जब बोलते हैं तो पहले परमात्मा में डुबकी मारते हैं। संसारी आदमी बोलता है तो उसकी वाणी मन व बुद्धि को छूकर आती है लेकिन ब्रह्मज्ञानी संत जब बोलते हैं तो उनकी वाणी आत्मा को छूकर आती है। मैं आपकी अमृतवाणी तो नहीं सुन पाता हूँ पर उसके आंदोलन मेरे शरीर को स्पर्श करते हैं। दूसरी बात, आपकी अमृतवाणी सुनने के लिए जो पुण्यात्मा लोग आते हैं उनके बीच बैठने का पुण्य भी मुझे प्राप्त होता है।''

बाबाजी ने देखा कि ये तो ऊँची समझ के धनी हैं। उन्होंने कहा : ''आप दो बार हँसना, आपको अधिकार है किंतु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप रोज सत्संग में समय पर पहुँच जाते हैं और आगे बैठते हैं, ऐसा क्यों ?''

''मैं परिवार में सबसे बड़ा हूँ। बड़े जैसा करते हैं वैसा ही छोटे भी करते हैं। मैं सत्संग में आने लगा तो मेरा बड़ा लड़का भी इधर आने लगा। शुरुआत में कभी-कभी मैं बहाना बना के उसे ले आता था। मैं उसे ले आया तो वह अपनी पत्नी को यहाँ ले आया, पत्नी बच्चों को ले आयी-सारा कुटुम्ब सत्संग में आने लगा, कुटुम्ब को संस्कार मिल गये।''

(शेष पृष्ठ १२ पर)

जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ।

(गुरु गोविंदसिंहजी जयंती : ५ जनवरी)

एक बार गुरु गोविंदसिंहजी के दर्शन करने के लिए पेशावर के सत्संगी आनंदपुर साहिब आये। एक-एक करके उन्होंने गुरु गोविंदसिंहजी के चरणों में शीश झुकाकर प्रणाम किया। जब एक छोटे-से बच्चे ने शीश झुकाया तो गुरु ने पूछा : ''बेटा ! क्या नाम है तेरा ?''

बच्चे ने कहा : ''सच्चे बादशाह ! मेरा नाम जोगा है ।''

गुरु गोविंदसिंहजी बोले : ''किधे जोगा है भई तू (भाई ! तू किसके लिए है) ?''

छोटे-छोटे हाथ जोड़कर उसने कहा : ''मैं तेरे जोगा, गरीबनिवाज ! मैं तेरे जोगा (मैं तेरे लिए) ।''

गुरु गोविंदसिंहजी बालक की बात सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, बोले : ''जोग्या ! जे[1] तू गुरु गोविंदसिंह दे[2] जोगा[3] ता[4] फिर गुरु गोविंदसिंह तेरे जोगा । अब तू जा नहीं, हमारे पास यहीं रह आनंदपुर साहिब ।''

जोगा वहीं रहकर गुरुचरणों की सेवा करने लगा। जब वह बड़ा हो गया तब एक दिन उसके पिताजी आये और बोले : ''गुरुसाहिब ! जोगा विवाह योग्य हो गया है। कृपा करके इसे घर भेज दीजिये । विवाह कर आये, फिर आपके चरणों में रहे ।''

१. जो २. के ३. लिए ४. तो

यह सुनकर जोगासिंह के मन में अहंकार आ गया कि 'मेरे जैसी गुरुसेवा कौन कर सकता है ? मेरी अनुपस्थिति में यह सेवा कौन कर पायेगा ?'

घट घट के अंतर की जानत ।
भले बुरे की पीर[1] पछानत ॥

गुरु को तो सब पता चलता है कि किसके मन में किस समय कैसा विचार आया है । गुरु गोविंदसिंहजी ने जोगासिंह को कहा : ''तेरे पिताजी आये हैं, तेरा विवाह तय हो गया है । तू घर जा, शादी हो जाय फिर हमारे पास आ जाना परंतु एक बात का ख्याल रखना- जिस समय हमारा हुक्मनामा आये, हम तुम्हें याद करें, हमारी चिट्ठी लेकर कोई सिक्ख तेरे पास पहुँचे तब आने में एक पल की भी देर न करना ।''

''जी गुरुदेव ! सदा आपका हुक्म ही मानता आया हूँ । अब तो यह जीवन है ही आपके लिए ।''

जोगासिंह निकल पड़ा । गुरु गोविंदसिंहजी ने एक सिक्ख को अपनी चिट्ठी के साथ जोगा के पीछे-पीछे यह कहकर भेज दिया कि 'विवाह में जिस समय भाई जोगा के दो फेरे हो जायें, तब यह चिट्ठी जोगा को देना और कहना : तुझे गुरुदेव ने इसी समय याद किया है ।' कड़ी परीक्षा थी ।

सिक्ख ने गुरु के आदेश का पालन किया । पत्र में लिखा था : 'हमारा हुक्मनामा मिले तो पढ़कर उसी समय चल पड़ना, आने में एक पल की भी देर मत करना ।' बाकी के फेरे छोड़ जोगा चल पड़ा ।

माता-पिता ने बड़ी मिन्नते कीं : 'जोगा ! दो फेरे रह गये हैं, पूरे करके जा ।' जोगासिंह ने कहा : ''नहीं, अब एक पल भी ठहरना गुरु के हुक्म की तौहीन करना है । मुझे आज्ञा दो ।'' वह तो चल पड़ा । जोगासिंह के तौलिये के साथ ही

१. पीड़ा

माता-पिता ने बाकी फेरे करवा के रस्म पूरी की। इधर जोगासिंह रास्ते में सोचने लगा, 'गुरुसाहिब के पास मेरे जैसा कौन सिक्ख होगा जो इतना आज्ञापालक हो कि विवाह भी बीच में छोड़ दे।'

जोगासिंह जब होशियारपुर के बाजार में से गुजरा तब उसकी नजर एक वेश्या पर पड़ी और मन में पाप ने जोर मारा कि 'शाम हो गयी है। रात यहीं बिताकर सुबह चला जाऊँगा।' रात को जोगासिंह सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर वेश्या के द्वार पर पहुँचा। दरवाजे पर एक पहरेदार लम्बा-सा लट्ठ लेकर खड़ा था। जोगासिंह अंदर जाने लगा तो पहरेदार ने कहा : ''ठहर जा प्यारे! तू तो गुरु का शिष्य लगता है। गुरु का शिष्य और इस पापवाली जगह पर! तुझे शोभा नहीं देता। यह तो पापगढ़ है। जा, वापस चला जा सिक्खा!''

जोगासिंह वापस आ गया। थोड़ा समय बीता, फिर सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गया। पहरेदार अब भी खड़ा था। उसने जोगासिंह को ललकारा : ''ओ सिक्ख! वापस चला जा। है तू गुरु का सिक्ख, फिर वेश्या के चौबारे पर क्या करने आया है?''

जोगासिंह बोला : ''तू मुझे सिक्ख कहता है, तू आप भी तो सिक्ख है। तू यहाँ क्यों खड़ा है?'' तब पहरेदार के नयन भर आये, कहने लगा : ''सिक्खा! मैं अपनी मर्जी से नहीं खड़ा हुआ, मैं किसीके द्वारा खड़ा किया गया हूँ।''

जोगासिंह समझा, शायद इसका मालिक अंदर गया है और इसको बाहर खड़ा कर गया है। उस पहरेदार ने सारी रात जोगा को अंदर नहीं जाने दिया। ब्राह्ममुहूर्त हुआ तब पहरेदार ने कहा : ''सिक्खा! अमृतवेला हो गयी है। स्नान करके अपने गुरु के चरणों में जा। इस पापगढ़ में क्या लेने आया है?''

जोगासिंह चल पड़ा। सोचने लगा, 'सचमुच, मैं आज पाप के ऐसे कुएँ में गिरनेवाला था, जहाँ पापों की आग मेरे पुण्यों को जलाकर राख कर देती।'

जोगासिंह ने आनंदपुर साहिब पहुँचकर गुरुजी के चरणों में प्रणाम किया और कहा : ''गरीबनिवाज! आपका हुक्म आया और मैं आ पहुँचा। मैंने एक पल की भी देर नहीं की।''

गुरु बोले : ''जोगा! सारी रात तूने हमें सोने नहीं दिया। तेरे कारण हम वेश्या के द्वार पर पहरा देते रहे कि मेरा सिक्ख कहीं नरकों में न जा पड़े।''

जोगासिंह चीख पड़ा : ''गुरुसाहिब! उस पहरेदार के रूप में आप थे?''

''हाँ जोगा! याद कर, जब तू छोटा-सा था और मैंने तुझसे नाम पूछा था तब तूने कहा था : 'मैं तेरे जोगा।' तब मैंने भी वचन दिया था कि 'जोगा! जे तू गुरु गोविंदसिंह दे जोगा ता फिर गुरु गोविंदसिंह तेरे जोगा।''

भाई जोगा गुरु गोविंदसिंहजी के चरणों से लिपट गया : ''गरीबनिवाज! अगर आप रक्षा नहीं करते तो सचमुच मैं तो नरक में गिरनेवाला था।''

''जोगा! तेरे मन में जो अहंकार आ गया था, वही मुझे दूर करना था। जब तक अहंकार है, तब तक प्रभु के साथ, गुरु के साथ मेल नहीं होता।''

जोगासिंह गुरुचरणों से लिपटकर रो-रो के माफी माँगने लगा :

दीनदयाल को बेनती सुनहुँ गरीबनिवाज!
जो हम पूत कपूत हाँ तो हैं पिता तेरी लाज॥

जब शिष्य पश्चात्ताप के आँसुओं से अपनी भूल के लिए प्रायश्चित्त करता है, गुरु को द्रवित हृदय से पुकारता है तो वे दीनदयाल उसकी पुकार सुनने में तनिक भी देर नहीं करते। हे शिष्य! तुझे अपनी भूल का पता चलने में देर हो सकती है, माफी माँगने में तेरी ओर से देर हो सकती है परंतु माफ करने में सद्गुरुदेव को कोई देर नहीं लगती। अपना अहंकार गुरुचरणों में अर्पित करने में तू देर कर सकता है लेकिन कृपा बरसाने में

उनकी ओर से कभी देर नहीं होती।

गुरु गोविंदसिंहजी ने जोगासिंह को हृदय से लगा लिया और उसके सिर पर हाथ रखकर बोले : ''जोगा ! यदि तू गुरु के लिए है तो गुरु तेरे लिए हैं । जो शिष्य पूर्णरूप से गुरु का हो जाता है, सम्पूर्ण प्रकृति, ईश्वरीय शक्तियाँ उसके अधीन हो जाती हैं ।''

फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ॥

अखा भगत, मतंग गुरु, रैदासजी, शबरी, सूरदासजी, मीराबाई - इनका जीवन गुरु का प्रसाद पाकर कितना निखरा ! वे लोग मूर्ख हैं जो रुपये-पैसे के आधार पर अपना भविष्य बनाने का सोचते हैं । असली भविष्य-निर्माण तो ईश्वर व ईश्वरप्राप्त आत्मारामी सद्गुरुओं के कृपा-प्रसाद से ही होता है । सत्ता व रुपये-पैसे से भविष्य उज्ज्वल करनेवाले मर-मिटे । गुरु से गद्दारी करनेवाला गोशालक कौन-से नरक में सड़ता होगा पता नहीं । एकलव्य, मीरा, शबरी जैसी गुरुभक्त आत्माएँ; एकनाथजी, प्रीतमदासजी जैसी पवित्र आत्माओं ने गुरुकृपा से अपना भविष्य कितना उज्ज्वल बना लिया और समाज का भी भविष्य उज्ज्वल बनाया। जो ईश्वरभक्तों, गुरुभक्तों को मिलता है उसे मनमुख, वासना और पद के गुलाम क्या जानें ? □

(पृष्ठ ९ का शेष) ब्रह्मचर्चा, आत्मज्ञान का सत्संग ऐसा है कि यह समझ में नहीं आये तो क्या, सुनायी नहीं देता हो तो भी इसमें शामिल होनेमात्र से इतना पुण्य होता है कि व्यक्ति के जन्मों-जन्मों के पाप-ताप मिटने लगते हैं, पूरे परिवार का कल्याण होने लगता है। फिर जो व्यक्ति श्रद्धा एवं एकाग्रतापूर्वक सुनकर इसका मनन-निदिध्यासन करे उसके परम कल्याण में संशय ही क्या ? □

परस्परं भावयन्तु
(एक-दूसरे को उन्नत करें)

- पूज्य बापूजी

यह एक अकाट्य सिद्धान्त है कि आप दूसरे के लिए जैसा सोचते हैं, वैसे ही विचार दूसरे के मन में आपके लिए आते हैं । आप अपने मित्र, पड़ोसी के लिए जिस प्रकार का भाव करते हैं, देर-सवेर वह भी आपसे उसी भाव से पेश आता है ।

एक राजा और एक नगरसेठ की आपस में मित्रता थी। वे रोज एक-दूसरे से मिले बिना नहीं रहते थे । नगरसेठ चंदन की लकड़ी का व्यापार करता था। वह थोड़ा-बहुत लापरवाह हो गया। एक दिन मुनीमों ने कहा : ''सेठजी ! माल भर गया है और ग्राहकी नहीं है । ब्याज चढ़ा है, तकलीफ हो रही है ।''

सेठ ने पूछा : ''अब क्या करें ?''

मुनीम : ''चंदन की लकड़ी खरीदनेवाले के पास चलें। कोई अच्छा व्यापारी मिल जाय तो ही हमें फायदा हो सकता है, नहीं तो नुकसान होगा ।''

सेठ के दिमाग में अचानक ऐसा विचार आया कि 'यदि राजा मर जाय तो उसको जलाने के लिए मंत्रियों को चंदन की लकड़ियाँ अपने पास से लेनी पड़ेंगी । हे भगवान ! ऐसा ही हो जाय ताकि मेरे धंधे में घाटा न हो ।'

शाम को सेठ हमेशा की तरह राजा से मिलने गया। उसे आता देख राजा के मन में हुआ : 'इस नगरसेठ के बच्चे ने मेरे से दोस्ती रख के इतना

पसारा किया है । ऐसा कोई नियम बनाऊँ कि इसका धन राज्य के खजाने में जमा हो जाय ।'

अब बाहर से तो दोनों एक-दूसरे से जैसे रोज मिलते थे वैसे ही मिले पर पहले जैसा आनंद नहीं आ रहा है, मजा नहीं आ रहा है । दिन-पर-दिन बीतते गये लेकिन पहले सहज स्वभाव से जो मस्ती मिलती थी वह अब गायब हो गयी ।

एक दिन नगरसेठ ने राजा से पूछ ही लिया : ''राजन् ! पिछले कुछ दिनों से हमें वह आनंद और मस्ती क्यों नहीं आ रही है ?''

राजा ने कहा : ''मुझे भी ऐसा हो रहा है । ऐसा क्यों हो रहा है यह तो जानना ही चाहिए । चलो, नगर के बाहर जो महात्मा रहते हैं, उनके पास चलें ।''

दोनों उन जीवन्मुक्त महापुरुष के पास आये । महात्मा को प्रणाम करके उनके पास बैठे और अपनी समस्या का समाधान पाना चाहा ।

राजा : ''बाबाजी ! हम दोनों बचपन के मित्र हैं । एक-दूसरे को मिले बिना नहीं रह सकते । कुछ दिनों से ऐसा लगता है कि हम हररोज की तरह मिलते तो हैं पर रस नहीं आता है, उतना आनंद नहीं आता है ।''

महात्मा : ''सीधी-सरल बात है- आप दोनों पहले शुद्ध भाव से मिलते रहे होंगे । अब एक-दूसरे के प्रति आप लोगों के मन में कुछ बुरे भाव जगे होंगे, कुछ ऐसे विचार उठे होंगे कि जिनमें दूसरे का अहित छुपा हो, इसलिए पहले जैसा आनंद नहीं आता है । अब आप दोनों प्रायश्चित्त करके अपना मन शुद्ध कर लो तो पहले जैसा आनंद फिर से आयेगा ।''

नगरसेठ ने कहा : ''मेरा चंदन की लकड़ी का व्यापार है । उसमें घाटा होने जैसी नौबत आ गयी है । मेरे मन में आया कि राजा का स्वर्गवास हो जाय तो मेरा चंदन बिक जायेगा ।''

राजा ने कहा : ''बस, उन्हीं दिनों से मेरे मन में आ रहा था कि इसके पास इतनी संपत्ति है, कैसे भी करके राज्य के खजाने में जमा करवा लूँ ।''

महात्मा ने कहा : ''ऐसा क्यों नहीं सोचा कि राजा को चंदन की लकड़ी का अलग से एक बढ़िया, आलीशान महल बनवाने की कोई बात जँच जाय ? इससे भी तुम्हारा चंदन बिक जाता । राजा मर जाय व मेरा चंदन बिके, इससे तो राजा और समृद्धशाली हो तथा मेरा चंदन महल में लग जाय ऐसा क्यों नहीं सोचा ? तुमने राजा के लिए गलत सोचा तो राजा के मन में तुम्हारे लिए गलत विचार आया । गलत सोचने से ही दोनों के बीच वैमनस्य आ गया ।''

आपके मन में किसीके लिए बुरे विचार आते हैं तो सामनेवाले का अहित हो या न हो परंतु आपका अंतःकरण जरूर मलिन हो जाता है । फलस्वरूप मन में अशांति उत्पन्न होती है, जो सब दुःखों का कारण है । कोई आपका कितना भी बुरा करना चाहे पर आप अगर सावधान होकर उसके लिए अच्छा ही सोचो और उसकी भलाई का ही चिंतन करो तो कोई आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा । बुरा सोचनेवाले के विचार भी बदल जायेंगे । उसका आयोजन सफल नहीं हो पायेगा ।

सद्‌भाव से सोचो तो परस्पर उन्नति होती है । जो झूठे मुकदमे करके अथवा दूसरों का शोषण करके उन्हें सताते हैं वे देर-सवेर ईश्वरीय कोप व प्राकृतिक कोप से अच्छी तरह सताये जाते हैं । उनकी मति में ऐसी-ऐसी वासना और कर्म की प्रेरणा होती है कि वे ही वासनाएँ व कर्म उन्हें ले डूबते हैं ८४ के चक्कर में, नरकों में, दोजखों में, नीच योनियों में । कितने ही गवाह, कितनी सारी सेटिंग करके जो सफल होना चाहते हैं वे अंत में देखो तो वहीं-के-वहीं रह जाते हैं । जो दूसरे के लिए मंगल सोचते हैं, उनके लिए भगवान सामनेवाले के हृदय में भी कुछ-न-कुछ मंगल प्रेरणा कर देते हैं । उनको प्राकृतिक विधान परम मंगल के प्रसाद से पावन कर देता है । इसलिए **परस्परं भावयन्तु ।** एक-दूसरे को उन्नत करें । ❐

'वह बुढ़िया आपके भी पीछे लगी है'

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भौतिक जगत में जैसे वैज्ञानिक आविष्कारों के साधन हैं; शरीर की, यातायात की, खान-पान की सुख-सुविधाएँ हैं, वैसे आध्यात्मिक जगत में शांति है, सामर्थ्य है, मुक्ति है और भौतिक व आध्यात्मिक जगत को सँवारने की सत्प्रेरणा भी है। आध्यात्मिक जगत का फायदा नहीं लेते हैं तो भौतिक जगत में फँस मरते हैं। सुख तो जरा-सा होता है पर लोग दुःख व मुसीबतों की खाइयों में जा गिरते हैं और गिरने के बाद उठना मुश्किल हो जाता है। उठने की जब खबर आती है तब तक समय बीत जाता है। किसी कवि ने कहा है :

जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढंग आया।
जब शमा बुझ गयी तो महफिल में रंग आया॥
मन की मशीनरी ने तब ठीक चलना सीखा।
जब बूढ़े तन के हर इक पुर्जे में जंग आया॥
गाड़ी निकल चुकी तो घर से चला मुसाफिर।
मायूस हाथ मलता वापस बेरंग आया॥
फुरसत के वक्त में न सुमिरन का वक्त निकाला।
उस वक्त वक्त माँगा जब वक्त तंग आया॥
आयु ने जब तेरी हथियार फेंक डाले।
यमराज फौज लेकर करने को जंग आया॥

वक्त जब हाथ से निकल चुका तो भजन का वक्त माँगा, बुढ़ापा आ गया तब आदमी को समझ आयी। उसके पहले अगर समझ आये तो बहुत कुछ सँवर सकता है, सँभल सकता है।

एक सदाचारी, संयमी, परोपकारी ब्राह्मण था। कुछ मिले तो बाँटकर ही उपयोग करने का उसका स्वभाव था। कहीं फावड़ा-कुदाली से काम करते-करते उसकी कुदाली को पारस छू गया और वह सोने की हो गयी। खोजने पर उसे पारस मिल गया। अब उसने पारस से स्वर्ण बनाना चालू किया। उसने अपने शरीर की आवश्यकताओं की मर्यादा रखी तथा औरों के दुःख दूर करने में उस सोने से खुले हृदय से सेवा करने लगा। दीन-दुःखियों को देता, धर्मशालाएँ बनवाता, आश्रमों में सेवा करता, साधु-संतों को तृप्त करता, दान-दक्षिणा देता। उसने पारसमणि का उपभोग नहीं किया, उपयोग किया।

आपके पास भी एक पारस है। यह मनुष्य-जीवन पारस है। सात्त्विक बुद्धि भी पारस है। सत्शास्त्रों का ज्ञान और सत्संग का प्रसाद भी पारस से कम नहीं है। उस ब्राह्मण के पास सोना बनानेवाला पारस था और आपके पास जीवन बनानेवाला पारस है।

जैसे लोभी का लोभ बढ़ता है, कामी का काम बढ़ता है, आलसी की निद्रा बढ़ती है, उद्योगी का उद्योग बढ़ता है, ऐसे ब्राह्मण की सत्कर्म की प्रवृत्ति बढ़ती चली गयी। पैसे का टोटा नहीं था और लेनेवाले लेते चले गये। लोगों ने कहा :

'दाता तो बहुत देखे लेकिन ऐसा दाता हमने नहीं देखा।' लोगों ने उसका नाम दानाध्यक्ष रख दिया। उस ब्राह्मण को लगा कि किसी योगनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ महापुरुष की भी तो सेवा कर लें। मनुष्य की सात्त्विक इच्छा हो तो प्रकृति उसको पूर्ण करने की व्यवस्था भी कर देती है।

जो सच्चे गुरु की खोज के लिए निकलते हैं, उनको कच्चे गुरु मिलते हैं तो उनके पास वे टिकते नहीं और देर-सवेर सच्चे गुरु तक पहुँच ही जाते

हैं लेकिन जो हैं कच्चे, करते हैं पाप और चाहते हैं कि सच्चे गुरु मिल जायें तो सच्चे गुरु के पास ऐसे लोग ज्यादा समय टिकते नहीं । उनको भी सच्चा होना चाहिए, तब सच्चे की पहचान होगी और सच्चे महापुरुष के पास मन टिकेगा ।

दानाध्यक्ष सच्चाई से सेवा करता था । अतः उसकी अंतरात्मा की पुकार ने अंतरात्मा में विश्रांति पाये हुए एक समर्थ योगी तक उसे पहुँचा दिया । खोजते-खोजते एक दिन उसे शांत अरण्य में वटवृक्ष के नीचे पद्मासन में बैठे एक ओजस्वी-तेजस्वी, सौम्यमूर्ति संत के दर्शन हुए। वे महापुरुष ध्यान-समाधि में थे। वह इंतजार करता रहा। समाधि खुली तो उनसे कहा : ''भगवन् ! आप मेरे यहाँ भोजन करने पधारिये अथवा तो मैं यहाँ इस वटवृक्ष के आस-पास साधना के लिए सुंदर गुफा, कुटिया, आश्रम जो आज्ञा करें बनवा दूँ।'' सच्चे महापुरुष की माँग क्या होती है, यह उसको पता नहीं !

संत ने कहा : ''मुझे यहाँ न गुफा चाहिए, न कुटिया और न आश्रम ।''

''तो बाबाजी ! आज्ञा करो, मैं कम-से-कम भोजन तो ले आऊँ ।''

''मैं काक मुद्रा (जिह्वा से वायु पीना) जानता हूँ। मुझे भूख-प्यास की तकलीफ नहीं होती ।''

उसी समय एक बुढ़िया वहाँ आयी, जिसका पेट सटा हुआ था, आँखें निकली हुई थीं, बाल सफेद हो गये थे, मानों अब गिरी, अब मरी। वह भूख से कराह रही थी ।

संत ने कहा : ''देख, मैं तो कैसा स्वस्थ हूँ, मुझे भूख नहीं है। इस भूखी बुढ़िया को खिला दे, जा।''

बुढ़िया ने कहा : ''देखो दानाध्यक्षजी ! मुझे खिलाओगे तो पेट भर के भोजन चाहिए मेरे को ।''

''हाँ, चल । तू कितना खायेगी ?''

''दानाध्यक्षजी ! मेरे को एक बीमारी लगी है। जितना भी कोई खिलाये, उतनी भूख बढ़ती जाती है। जो मेरी भूख नहीं मिटा पाता, मैं उसीको खा जाती हूँ । मेरी भूख मिटाने की आप शपथ लेते हैं तो मैं चलती हूँ । भूख नहीं मिटायी तो मैं आपको खा जाऊँगी ।''

दानाध्यक्ष हँसा, महाराज भी हँसे । दानाध्यक्ष हँसा कि इतनी संपत्तिवाले मुझको यह क्या खायेगी ? जितना खाना चाहेगी उतना खिला दूँगा । महाराज समझ की संपत्ति के कारण हँसे, शाश्वत संपत्ति के कारण हँसे और दानाध्यक्ष नश्वर संपत्ति को याद करके हँसा । दानाध्यक्ष उस बुढ़िया को ले गया और रसोइयों को कहा कि ''इस बुढ़िया को बड़े थाल में भोजन परोसो, समझो भीम आये हैं । इसको भूखा मत जाने देना ।''

नौकरों ने ऐसा ही किया । परोसते गये, परोसते गये और वह सब कुछ स्वाहा करती गयी । अंत में परोसने के लिए कुछ नहीं बचा । दानाध्यक्ष आया तो वह उस पर हावी हो गयी कि अब तुझे खाऊँगी । दानाध्यक्ष घबराया कि 'अब कोई चारा नहीं, अब तो मौत सामने है । भागो उन बाबाजी के पास ।'

आगे दानाध्यक्ष और पीछे उस बुढ़िया के रूप में मौत दानाध्यक्ष का पीछा करते हुए भागी ।

''बाबा ! यह बुढ़िया नहीं, यह तो कोई मौत है !! हद हो गयी बाबा ! जितना भी खिलाया, सब स्वाहा ! इसका पेट नहीं भरा, अब यह मुझे खाना चाहती है । बाबा ! मैं तो आपकी शरण हूँ ।''

बाबा ने कहा : ''अच्छा, बैठो । आँखें बंद करो, भगवान का सुमिरन करो ।''

आँखें बंद हुईं, भगवान का सुमिरन हुआ । संत के संकल्प से बनी हुई बुढ़िया की आकृति उनके इशारे से शांत हो गयी ।

संत ने कहा : ''वत्स ! वह बुढ़िया और कोई नहीं, मनुष्य के जीवन में लगी हुई वासना है । शरीर बूढ़ा हो जाता है, मर जाता है लेकिन

वासना साथ चलती है । यह कई शरीरों को खोखला कर गयी, कई शरीरों को खा गयी । इसकी ज्यों-ज्यों पूर्ति करते जाओ, त्यों-त्यों और चाहिए-और चाहिए में तिजोरियाँ खप जाती हैं, दोस्तियाँ खप जाती हैं, जीवन खप जाता है, और तो क्या बतायें कई जन्म खप जाते हैं पर यह नहीं मिटती । बेटा ! जिसकी वासना नहीं मिटी, मान लो उसका दुःख भी नहीं मिटा । फिर चाहे पारस भी मिल जाय तो क्या है ? दुनिया का राज मिल जाय, वाहवाही मिल जाय, धन मिल जाय तो क्या है ? मनोवांछित वस्तुएँ मिल जायें लेकिन वासना मौजूद है तो उसको और भी कुछ चाहिए, चाहिए, चाहिए... । आज का मानव खपे-खपे में खपा जा रहा है । अब तू वासना बढ़ाने के रास्ते मत चल, उसे मिटाने के रास्ते चल । वासना मिटते ही चित्त में विश्रांति मिलती जायेगी और ज्यों-ज्यों विश्रांति मिलती जायेगी, त्यों-त्यों सामर्थ्य आता जायेगा ।

वत्स ! तेरे शुभ कर्मों का फल है, ईश्वर-प्रीत्यर्थ कर्म करने का फल है कि तुझे सत्संग सुनने का अवसर मिला है । अभागा आदमी सत्संग नहीं सुन सकता है । वह राग-रागिनियों और ईश्वर से दूर ले जानेवाली, संसार की वासना बढ़ानेवाली फिल्मों में समय बरबाद कर देगा । सत्संग में शांतचित्त होकर बैठना साधारण आदमी का काम नहीं है । दानाध्यक्ष ! तू साधारण आदमियों से तो उन्नत है किंतु उस बुढ़िया का शिकार तो अब भी है ।''

''बाबा ! वह आयेगी तो नहीं ?''

''अभी नहीं आयेगी । छुपी बैठी है, कभी भी आ सकती है ।''

वह बुढ़िया (वासना) आपके भी पीछे लगी है । अभी भले ही न दिखे परंतु छुपी बैठी है, एक में से अनेक रूप होकर कभी भी आ सकती है। सावधान रहना !

संत बोले : ''अच्छा वत्स ! जाओ । भगवान को प्रार्थना करो कि सत्पुरुषों का संग मिल जाय, सत्संग मिल जाय । सत्संग मिलेगा तो सत्यस्वरूप ईश्वर मिलेगा । ईश्वर मिल गया तो वासना क्या करेगी ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, वासना - ये तब तक सताते हैं, जब तक ईश्वरीय सुख नहीं मिलता ।''

संत तुलसीदासजी कहते हैं :

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।

निज के सुख के बिना, अंतरात्मा के सुख के बिना मन स्थिर कैसे होगा, निर्वासनिक कैसे बनेगा ? हम लोग कीर्तन करके भी निज सुख के लिए शांत होते हैं और सत्संग करके भी थोड़ी देर चुप होकर आत्म-परमात्म विश्रांति पाते हैं ।

दानाध्यक्ष बोला : ''बाबाजी ! कुछ उपदेश दीजिये, मेरा मंगल हो ।''

''वत्स ! सुबह नींद में से उठो तो इधर-उधर झाँकना मत । आँखें बंद करके लेटे रहना या बैठ जाना । नींद से उठने के वक्त का जो सुख है वह निर्वासनिक नारायण का सुख है । वह सुख जितना बढ़ता जायेगा उतना ही वासना का जोर टूटता जायेगा । फिर मन इधर-उधर जाय तो ईश्वर का चिंतन करके 'ॐ शांति...परमात्म-शांति, परमेश्वरीय शांति' - इस प्रकार दो-पाँच मिनट, जितनी देर बैठ सको और परमात्म-चिंतन करके शांत हो सको उतना हितकारी है । फिर अपना नित्य-नियम कर लेना । फिर आगे रास्ता होता जायेगा, तुझे कोई संत मिल जायेंगे ।''

उस दानाध्यक्ष ने बाहर के पारस का तो दान-पुण्य में और शरीर की आवश्यकता-पूर्ति में उपयोग किया लेकिन मन-मतिरूपी पारस, संत के सत्संगरूपी पारस का उपयोग अपने कल्याण के लिए किया, उसकी योग्यता और पुण्य बढ़ गये, मन तथा बुद्धि उन्नत हो गये ।

एक दिन उसे लगा कि उन बाबाजी के दर्शन

करने जाऊँ । उनके दीदार से बड़ी शांति मिली थी, उनके सत्संग से बड़ी समझ मिली थी और उस बुढ़िया से भी उन्होंने बचाया था । जिन्होंने उस बुढ़िया से मेरी रक्षा की, वे मौत से भी मेरी रक्षा करेंगे, जन्म-मरण से भी रक्षा करेंगे । दानाध्यक्ष दर्शन करने पहुँचा, देखा कि न वहाँ पर वटवृक्ष है और न संत हैं !

'शायद वे योगबल से यहाँ आये होंगे, आगे कहीं रहते होंगे । मैं अब उनके दर्शन के बिना नहीं रह सकता हूँ ।'- ऐसा सोचकर वह आगे चला । रात हो गयी लेकिन वे संत नहीं दिखे । उसने सोचा, 'अब लौटूँगा तो रात भर चलना पड़ेगा । रास्ते में जंगली प्राणी होंगे, क्या करूँ ?' एक वृक्ष के तने का आश्रय लेकर दानाध्यक्ष लेट गया । ठण्ड से ठिठुरा । उसने मन-ही-मन पुकारा : ''हे गुरुजी ! आप कहाँ हैं मुझे पता नहीं परंतु मैं कहाँ हूँ आपसे छुपा नहीं है। हे प्रभु ! हे गुरुजी !...'' ऐसा करते-करते उसे कब नींद आयी, पता नहीं । सुबह उठा तो देखा कि कोई उसे मृगचर्म ओढ़ा गया है ।

(घना जंगल, अँधेरी रात... फिर किसने ओढ़ाया मृगचर्म ? जानिये अगले अंक के 'कथा अमृत' में) ❐

समस्त भय एवं चिन्ताएँ आपकी इच्छाओं के परिणाम हैं । आपको भय क्यों लगता है ? क्योंकि आपको आशंका रहती है कि अमुक चीज कहीं चली न जाय । लोगों के हास्य से आप डरते हैं क्योंकि आपको यश की अभिलाषा है, कीर्ति में आसक्ति है । इच्छाओं को तिलांजलि दे दो । फिर देखो मजा ! कोई जिम्मेदारी नहीं... कोई भय नहीं ।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

सार बातें

✻ दूसरों के द्वारा अपनी तारीफ सुनने की इच्छा न करो । उसको विषभरी मिठाई समझो । मनुष्य को अपनी बड़ाई बहुत प्यारी लगती है परंतु जब वह बड़ाई के चक्कर में पड़ जाता है तब फिर चौरासी के चक्र से छूटने की आशा चली जाती है । बड़ाई सुनने का ही अभ्यास हो जाता है, वह अपनी सच्ची आलोचना भी बरदाश्त नहीं कर सकता ।

मान पुड़ी है जहर की खाये सो मर जाय ।
चाह उसीकी राखता वह भी अति दुःख पाय ॥

✻ अपना दुःख सुनाने की इच्छा कम रखो, दूसरे का दुःख सुनो और तुम्हारा दुःख बढ़ने से यदि उसका दुःख मिट सकता हो तो साहस करके उसका दुःख मिटाने की चेष्टा करो। तुम्हारा दुःख एक बार बढ़ता हुआ चाहे दिखायी देगा परंतु परिणाम में तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा । ऐसे आचरणों से सचमुच तुम संतत्व को प्राप्त कर सकोगे ।

अपने दुःख में रोनेवाले मुस्कराना सीख ले ।
दूसरों के दुःख दर्द में आँसू बहाना सीख ले ॥

✻ दिल को पीड़ा देनेवाली कोई बात किसीको मत बोलो । न किसीके दोषों का चिंतन व प्रचार करो । तुम्हारा हृदय साधुतापूर्ण तो तब माना जायेगा, जब तुम्हारे हृदय में किसीके दोषों की स्फुरणा ही न हो। तब तुम स्वयं निर्दोष बन जाओगे ।

✻ ज्यों-ज्यों संतों का संग होता है, साधना होती है, सेवा होती है त्यों-त्यों अविद्या नष्ट होती है और ब्रह्मविद्या प्रकाशित होती है ।

✻ आपको आत्मज्ञानी गुरु के प्रति जितना अहोभाव होगा, आप उनके प्रति जितने वफादार होंगे उतना ही आपका चित्त शांत होगा ।

✻ सत्शिष्य के लिए तीन बातें अत्यंत आवश्यक हैं - एक तो भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरुष की शरणागति, दूसरी बात मोक्ष की इच्छा और तीसरी बात शास्त्र तथा ब्रह्मवेत्ता की आज्ञा के अनुसार अपने चित्त की उन्नति करना । ❐

नैष्कर्म्य सिद्धि पा लें

- पूज्य बापूजी

एक होता है लौकिक कर्म, दूसरा वैदिक कर्म और तीसरा नैष्कर्म्य (निष्काम कर्म)। लौकिक कर्मों में कर्ता का बल काम करता है। उसका बुद्धिबल, प्रारब्धबल, शरीरबल, धनबल, जनबल, सत्ताबल - ये सब काम करते हैं, तब लौकिक लाभ होते हैं लेकिन वे देखते-देखते साबुन के बुलबुले की तरह नष्ट हो जाते हैं। बचपन में, पढ़ाई के दिनों में, शादी के दिनों में, दस साल पहले कितने-कितने लाभ हो गये थे, अभी देखो तो सपना।

लौकिक कर्म में कर्ता का बल हो परंतु प्रारब्ध न हो तो लोग थक जाते हैं, सफलता नहीं मिलती। कर्ता का बल हो, धन हो पर अक्ल नहीं हो तो लोग फँस जाते हैं। अक्ल है किंतु प्रारब्ध उलटा होता है तो भी फँस जाते हैं। तो लौकिक कर्म का फल देखते-देखते नष्ट हो जाता है या तो फँसानेवाला हो जाता है।

वैदिक कर्म में भी कर्ता का बल जरूरी होता है लेकिन उसमें श्रद्धा की विशेषता होती है, मंत्र की विशेषता होती है। मंत्र, श्रद्धा और कर्ता- इन तीनों के बल से दैविक जगत की सफलताएँ मिलती हैं लेकिन भगवान के नाम में कर्ता का बल मुख्य नहीं है। कर्ता में भाव, श्रद्धा हो पर बल भगवन्नाम का काम करता है। भगवन्नाम की यह विशेषता है कि वहाँ कर्ता का जितना भी बल है उससे कई गुना भगवद्-सत्ता का बल उसकी सहायता में लगता है।

तीसरा होता है 'नैष्कर्म्य'। कर्म तो करे, फल की इच्छा न रखे तो नैष्कर्म्य हो गया। कर्म किया और लौकिक फल की इच्छा की तो कर्ता फँस जायेगा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

'तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उनके फलों में कभी नहीं।' **(गीता : २.४७)**

फल की इच्छा छोड़ दें बस, नैष्कर्म्य हो जायेगा। जितनी निष्कामता होती है उतनी प्रेरणाएँ भी अच्छी मिलती हैं। आप कल्पना नहीं कर सकते ऐसी सद्बुद्धि भगवान देते हैं। भगवान का सहयोग खूब मिलता है। हम भगवन्नाम का आश्रय लेकर जो कर्म करते हैं उसमें भगवान हमारी योग्यता खूब तेजी-से बढ़ा देते हैं लेकिन हमें होता है कि यह हमारी योग्यता है। वास्तव में होता भगवत्कृपा से है। अगर अपनी योग्यता होती तो पहले क्यों नहीं किया ? और योग्यता है तो सदा करके दिखाओ। बुद्धि में, मन में सत्ता उसी परमात्मा की है। वह परमेश्वर ज्ञानस्वरूप है। अपने अहं की योग्यता क्या है ? अहं तो गुमराह करता है।

मेरी हो सो जल जाय, तेरी हो सो रह जाय।

जो मेरी इच्छा और मेरी योग्यता है वह जल जाय, तेरी जो है वह रह जाय।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।

आपका लौकिक कर्म में कितना समय जाता है, वैदिक कर्म में कितना जाता है और नैष्कर्म्य में कितना जाता है ? लौकिक की तड़प कितनी, वैदिक की कितनी, नैष्कर्म्य की कितनी ? इससे पता चल जायेगा कि आप अपना भविष्य अंधकारमय बना रहे हैं या प्रकाशमय बना रहे हैं। लोग सोचते हैं, 'यह बनाऊँगा, यह पाऊँगा, यह करूँगा, डॉक्टर बनूँगा, इंजीनियर बनूँगा, वकील बनूँगा...' किंतु आखिर क्या ?

एक वैद्य मेरे पास आया था। मुझे बोला : ''मैं बड़ा अस्पताल बनाना चाहता हूँ। आपके हाथ से ईंट रखवाऊँगा।'' उसका सपना बहुत बड़ा था। कुछ ही दिन बाद किसी दूसरे वैद्य ने मुझे बताया कि वह तो मर गया। मैंने कहा : ''अरे ! वह तो बड़ा प्रभावशाली, हट्टा-कट्टा, जवान था।''

लौकिक कर्म कितने भी करो सपने की तरह हैं। बात वहीं-की-वहीं रह जाती है, मृत्यु आकर गला दबोच लेती है। तो पहले नैष्कर्म्य सिद्धि कर लो फिर लौकिक कर्म करो, वैदिक कर्म करो। इससे लोगों का भी भला होगा और आपका भी समय विनोदमात्र व्यवहार करते हुए आनंद में जायेगा।

अगर हम (पूज्य बापूजी) लौकिक काम-धंधे में लगे रहते अथवा यज्ञ-याग आदि वैदिक कर्म में लगे रहते तो हमारी क्या हालत होती ? हमने (पूज्य बापूजी) पहले अपना तात्त्विक, नैष्कर्म्य सिद्धि पाने का काम कर लिया तो अब लौकिक काम भी हो रहे हैं और वैदिक काम भी आनंद से हो रहे हैं। हमको तो कोई घाटा नहीं पड़ा। पहले नैष्कर्म्य सिद्धि कर लो। निष्काम कर्मयोग, नैष्कर्म्य तत्त्व की प्राप्ति बस ! उसे करने में असाधन न घुसे, लापरवाही, राग-द्वेष न घुसे। करनी तो नैष्कर्म्य सिद्धि है लेकिन 'यह अपने गुट का, यह दूसरे गुट का, यह अपना, वह पराया...' तो असाधन हो जाता है।

सब तुम्हारे तुम सभीके, फासले दिल से हटा दो।

संकीर्णता भी असाधन है। **वासुदेवः सर्वम्।** आपको जहाँ पहुँचना है उसकी भावना अभीसे करो।

सत्यं शरणं गच्छामि।

'हम सत्यस्वरूप ईश्वर की शरण जाते हैं।'

जिस संसार को छोड़ना है उसके लिए हम सब गड़बड़ी कर लेते हैं, अपना दिल खराब कर लेते हैं और जो कभी नहीं छूटता उस परमात्मा को पाने के लिए लगते नहीं हैं। अपने साथ हम कितना जुल्म करते हैं ! कितना धोखा करते हैं !

जब तक उस परमात्म-तत्त्व का ज्ञान नहीं हुआ, गुरुकृपा से ज्ञान का दीया नहीं जगमगाया, तब तक सब कुछ मिल जाय फिर भी सब दुःख नहीं मिटेंगे, भय नहीं मिटेगा, चिंता नहीं मिटेगी। मृत्यु आयेगी तो सब यहीं रह जायेगा, फिर पुनः किसीके गर्भ में जाना पड़ेगा और गर्भ नहीं मिला तो नालियों और गटरों में बहना पड़ेगा, बिल्कुल पक्की बात है। अतः सावधान ! सत्संग, सुमिरन करके सत्यस्वरूप अपने 'मैं' की खोज में लग जाओ। भय, दुःख, वियोग तब तक बने रहेंगे जब तक अभय आत्मा को, परमात्मा को अपने चैतन्यरूप में नहीं जाना। इसलिए राजे-महाराजे राजपाट छोड़कर उस निर्भय पद को, नैष्कर्म्य सिद्धि को पाने के लिए संतों के चरणों में जाते थे। ❑

...प्रवृत्ति तभी सार्थक है

- पूज्य बापूजी

प्रवृत्ति से परोपकार होता है तो प्रवृत्ति सार्थक है। उस उपकार के बदले में शांति मिलेगी। प्रवृत्ति अगर स्वार्थ से करते हैं तो बदले में भोग, रोग व वासना मिलेगी और परोपकार के लिए करते हैं तो विश्रांति, सामर्थ्य और निर्भयता मिलेगी। प्रवृत्ति के पहले विश्रांति होती है तथा प्रवृत्ति के बाद भी विश्रांति होती है। फिर प्रवृत्ति किसलिए करते हैं ? प्रवृत्ति अगर संसार को पाने के लिए करते हैं, स्वार्थ से करते हैं तो वह व्यर्थ है और ईश्वर को पाने के लिए करते हैं, परमात्म-शांति पाने के लिए करते हैं तो आपका दुःख टिकेगा नहीं और सुख मिटेगा नहीं। बदलनेवाले शरीर को मैं मानकर अबदल आत्मसुख, आत्मसामर्थ्य खोओ मत। ❑

गलती

- पूज्य बापूजी

बड़ी-से-बड़ी गलती हो जाय, बड़े-से-बड़ा अपराध हो जाय लेकिन अपनी गलती मानने की तथा निकालने की तत्परता है तो वह आदमी एक दिन जरूर ऊँचाई को छुएगा और बड़े-से-बड़े अच्छे काम करता है किंतु अपनी गलती न मानता है, न निकालता है तो वह एक दिन जरूर पतन की खाई में गिरेगा।

आप अगर बंधनों से मुक्त होना चाहते हो, अपने अंतःकरण को परिस्थितियों से ऊपर उठा लेना चाहते हो, आपके हृदय में अगर सचमुच में सरलता है और अपना उद्धार करने की तत्परता है तो अपनी गलती को स्वीकार करना सीखो। मान लो, किसीको आपके ऊपर गुस्सा आ रहा है और आपका दोष नहीं है तो भी आप उसको सच्चे हृदय से कहो कि 'भाईसाहब ! मेरी गलती के कारण आपको तकलीफ हो रही है, गुस्सा आ रहा है। सचमुच मेरा कसूर है, मैं अपराधी हूँ, आप क्षमा करना। मैं अपना दोष निकालने की कोशिश करता हूँ, आप नाराज न हों।' आपका अंतःकरण अंदर से मधुर हो जायेगा और सामनेवाले का अंतःकरण भी देर-सवेर पिघल जायेगा। यह है मुक्ति का मार्ग ! इसका अवलम्बन लेने पर राग-द्वेष से आपका मोक्ष हो जायेगा। मान में राग होता है और अपमान में द्वेष होता है। यदि आपने मान की इच्छा नहीं रखी और अपमान के समय सावधान रहे तो राग-द्वेष से आपका अंतःकरण ऊपर उठ जायेगा, आप सीधे मोक्ष के अधिकारी हो जायेंगे। आपकी गलती नहीं हो फिर भी सामनेवाले की बातें सह लेते तो आप गुणातीत होते।

आपकी गलती है और सामनेवाला गुस्सा करता है तब आप कह देते हो कि 'मेरे कारण आपको गुस्सा आ रहा है। गलती तो जरूर है और मैं गलती निकालूँगा। अभी नहीं निकल रही है लेकिन प्रयत्न करके निकालूँगा।' फिर वह दो बातें सुनाता है, आप ईमानदारी से सुन लेते हैं और अपनी गलती निकालने में लग जाते हैं तो मोक्ष तो नहीं लेकिन स्वर्ग तक तो आप पहुँच ही गये। आप सात्त्विक हो गये, गुणातीत नहीं हुए। गलती है और सह रहे हैं तो आप सज्जन हैं, सात्त्विक हैं, आपका यश रहेगा। डाँटनेवाला आपसे प्रभावित होगा और आपका अंतःकरण पवित्र बनेगा।

पहली श्रेणी में आप ब्रह्म बन जाते हैं। दूसरी में आप देव होते हैं। तीसरी श्रेणी यह है कि आपकी गलती है और आप पर कोई क्रोध करता है तब आपकी गलती है या नहीं यह आपको पता नहीं चलता लेकिन आप शांत हैं, सह रहे हैं और अपनी गलती सुन रहे हैं, निकालने की कोशिश करेंगे लेकिन जो आपकी गलती बताता है, उसके प्रति सहानुभूति नहीं है, उसे आप धन्यवाद नहीं देते तो आप तीसरी श्रेणी में आ गये।

जो आपकी गलती बताता है उसको आप सचमुच में प्यार करते हैं, सचमुच में हृदय से धन्यवाद देते हैं तब तो आप देव हो लेकिन वह आपकी गलती बताता है और आप धन्यवाद नहीं देते, गलती स्वीकार कर लेते हो तो मानव हो और आप स्वीकार नहीं करते, अपनी गलती की सुरक्षा करते हो, कारण बताते हो कि 'यह कारण है- वह कारण है', अपनी गलती को यदि ढँकते हो और सामनेवाले का मुँह बंद करना चाहते हो तो आप आसुरी माया में (शेष पृष्ठ २१ पर)

शास्त्रसम्मत जीवन जीने में दुनिया की परवाह न करो

- पूज्य बापूजी

एक बार पिता और पुत्र घोड़ा लेकर कहीं जा रहे थे । पुत्र घोड़े पर था और बाप पैदल । एक गाँव से गुजरे तो वहाँ के लोगों ने कहा : ''कैसा कलियुग आ गया है ! जवान, हट्टा-कट्टा बेटा घोड़े पर बैठा है और बूढ़ा बाप बेचारा पैदल जा रहा है ।''

लड़का नीचे उतरा और पिता से बोला : ''पिताजी ! आप घोड़े पर बैठ जाइये, मैं पैदल चलूँगा ।''

बाप घोड़े पर बैठ गया । चलते-चलते वे दूसरे गाँव में पहुँचे । वहाँ के लोगों ने जब उन्हें देखा तो बूढ़े को उलाहना देते हुए कहा : ''देखो, बूढ़ा हो गया है पर घोड़े पर बैठने का शौक अभी तक गया नहीं है । अपने बेटे को पैदल चलने के लिए छोड़ दिया है और खुद घोड़े पर बैठ गया है । कितनी आसक्ति है !''

ऐसा सुनते ही बाप ने बेटे से कहा : ''न तुम नीचे जाओगे न मैं, दोनों ही घोड़े पर बैठते हैं ।''

दोनों घोड़े पर बैठ गये । यात्रा करते-करते एक बाजार से गुजरे । वहाँ के लोगों ने कहा : ''देखो, इन्हें शर्म नहीं आती । एक मूक प्राणी पर दो सवार बैठे हैं ।''

दोनों उतर गये । थोड़ा आगे जाने पर बाजार में खड़े लोगों ने व्यंग्य कसते हुए कहा : ''कैसे बुद्धू हैं ! घोड़ा साथ में है फिर भी दोनों पैदल जा रहे हैं ।''

अब घोड़ा खाली जाय तब भी लोग नाराज, दोनों बैठें तो नाराज, केवल बाप बैठे तो नाराज और केवल बेटा बैठे तो भी नाराज ! अब क्या किया जाय ? लोगों को कैसे चुप करें ?

पिता-पुत्र खिलौने जैसे क्यों हो गये ? क्योंकि उनका आग्रह था कि उन्हें कोई कुछ कहे नहीं । अरे ! दुनिया में आज तक ऐसा कोई नहीं हुआ जिसके लिए कोई कुछ कहे नहीं । चाहे महात्मा बुद्ध हों, संत कबीरजी हों, भगवान रामजी के गुरु वसिष्ठजी महाराज हों, भगवान श्रीकृष्ण हों या कोई अन्य हो; कहनेवाले तो कुछ-का-कुछ कहेंगे ही । बाह्य प्रतिक्रियाओं से अप्रभावित रहकर तुम शास्त्रसम्मत जीवन जीयो लेकिन शास्त्रविरुद्ध करते हुए तुम्हें अपनी तरफ से बेशर्म भी नहीं होना चाहिए - 'कहनेवालों को कहने दो, हम तो शराब पीयेंगे...' नहीं, ऐसा नहीं । अपने शास्त्रसम्मत कर्तव्यकर्मों को करो । कोई कुछ अनुचित वचन कह दे तो 'हरि ॐ तत्सत्, बाकी सब गपशप' यह मंत्र दोहरा लो । इससे ऐसे वचनों का तुम पर प्रभाव नहीं पड़ेगा और तुम्हारे द्वारा कइयों को सत्प्रेरणा मिलेगी । ❐

(पृष्ठ २० का शेष) उलझ रहे हो । फिर चाहे कितनी भी माला फिराओ, कितने ही व्रत करो, कितने ही उपवास करो लेकिन अगर गलती को छुपाने का अथवा गलती दिखानेवाले के प्रति रोष करने का- यह दोष नहीं निकला तो अहंकार मिटेगा नहीं, पाप मिटेंगे नहीं, बुरी आदत दूर होगी नहीं, जीवत्व पिघलेगा नहीं और शिवत्व प्रकट नहीं होगा । इसीलिए शास्त्र कहते हैं कि 'मनुष्य ! तू अपने भाग्य का आप विधाता है । जीवत्व की गलतियों को उखाड़ फेंक, शिवत्व जगा ।' ❐

शक्तिसंचार का दिव्य साधन : सम्प्रेषण

गुरु द्वारा शिष्य को ज्ञान प्रदान करने की दो पद्धतियाँ हैं - एक का नाम है शिक्षण और दूसरी का सम्प्रेषण । जब मौखिक रूप से ज्ञान प्रदान किया जाता है तथा उसे ग्रहण करने, समझने और उसके विश्लेषण का आधार बुद्धि होती है तो इस पद्धति को 'शिक्षण' कहते हैं किंतु जब ज्ञान का संचार सूक्ष्म स्तर पर हो, संचार का वाहन अवचेतन मन हो तथा ग्रहण करनेवाला भी अवचेतन मन ही हो तो इस पद्धति को 'सम्प्रेषण' कहते हैं ।

समय-समय पर ऐसे गुरु और शिष्य हुए हैं जिनके बीच ज्ञान का संचार बिना किसी भौतिक संपर्क के होता रहा है । ऐसे संचार के मार्ग में भौगोलिक बाधाएँ कोई अर्थ नहीं रखतीं । गुरु चाहे कितने भी दूर हों, शिष्य अपने गुरु के साथ मानसिक संबंध जोड़कर अपनी आंतरिक उन्नति कर लेता है । एक-दो बार उनके संपर्क में आकर फिर दूर होने पर भी भावनाओं, विचार, चिंतन के द्वारा उनके साथ मानसिक संबंध से उनकी विचारधारा, उनकी शैली, उनकी प्रेरणा पाकर वह बहुत ऊँचा उठ जाता है । जैसे एकलव्य था । गुरुजी के आश्रम में रहने को नहीं मिला तो कोई बात नहीं, गुरुजी को देख लिया, मिट्टी-गारे से गुरुजी की मूर्ति बनायी और देखते-देखते एकाकार हुआ, मानसिक संबंध जोड़ा तो धनुष-विद्या में इतना प्रखर हो गया कि अर्जुन जैसा योद्धा भी बौना रह गया । मानसिक संबंध से गुरु की कैसी कृपा उसने अपने अंदर विकसित कर दी !

गुरु और शिष्य के बीच जो सम्प्रेषण होता है वह सामान्यतः मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश के स्तर पर होता है । एक नया शिष्य गुरु के साथ मानसिक स्तर पर संचार स्थापित करने में सक्षम होता है । इस स्तर पर वह अपने विचारों, भावनाओं आदि के माध्यम से संपर्क करता है और उनका आशीर्वाद भी प्राप्त करता है । जब संचार अधिक सशक्त और संबंध दृढ़ होता है तथा चेतना का स्तर ऊँचा उठता है, तब गुरु और शिष्य के बीच आत्मिक स्तर पर सम्प्रेषण होने लगता है । इस तरह पहले मन से संबंध जोड़ा जाय, फिर आध्यात्मिक तत्त्व विचारकर तत्त्वस्वरूप में आ गये ।

गुरुमंत्र शिष्य के लिए गुरु के साथ मानसिक संपर्क जोड़ने की एक कड़ी है । यह वह सूत्र है जो उसे अपने गुरु से बाँधता है । गुरुमंत्र के जप-सुमिरन द्वारा शिष्य अपनी चेतना के स्तर को ऊँचा उठाने में सक्षम होता है । मंत्र के द्वारा गुरु दिव्य आध्यात्मिक शक्ति का सम्प्रेषण कर सकते हैं इसलिए उसे गुरु मंत्र, बड़ा मंत्र कहते हैं । गुरु से, गुरु के अनुभव से शिष्य को एकाकार करने के लिए मंत्र बहुत ही सक्षम माध्यम होता है ।

गुरु द्वारा सम्प्रेषित तथा शिष्य के आंतरिक मस्तिष्क द्वारा स्वीकृत किया गया ज्ञान बौद्धिक प्रदूषण से पूर्णतः मुक्त होता है । यह जगत का जो बौद्धिक ज्ञान है, इस बौद्धिक प्रदूषण से, बौद्धिक कसरत से सम्प्रेषित ज्ञान निराला होता है । उसमें तो

गुरोरस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ।

गुरु कोई बुद्धिपूर्वक समझाने नहीं बैठेंगे और शिष्य कोई बौद्धिक मजूरी नहीं करेगा, सहज में ही आत्मिक संबंध से रसमय होने लगेगा, अपने-आप सूझबूझ प्रकट होने लगेगी । इधर-उधर की कथा-कहानियों, किस्सों की तो आम आदमी के लिए जरूरत पड़ती है, बाकी शिष्य और गुरु दोनों

चुप बैठें तो भी काम होने लगता है। गुरु बिना बोले सब बोल देते हैं, शिष्य बिना सुने सब सुन लेता है - ऐसे चलता है फिर !

बुद्धि एक अति अक्षम उपकरण है। विश्लेषण, गणित या आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर आध्यात्मिक विद्या को कदापि आत्मसात् नहीं किया जा सकता और न ही कभी नापा जा सकता है। सारे जगत की बुद्धियाँ और आधुनिक विज्ञान का जहाँ 'दी एंड' (अंत) होता है, वहाँ से आध्यात्मिकता की 'दी बिगिनिंग' (शुरुआत) होती है। जहाँ सारी दुनिया की बुद्धियाँ समाप्त होती हैं, वहाँ से वेदांत शुरू होता है। यह ऐसा दिव्य खजाना है। बुद्धि इसको नहीं जान सकती। **मति न लखे जो मति लखे।** 'जिसको बुद्धि नहीं देख सकती लेकिन जो बुद्धि को देखता है।' सँड़सी तपेली को पकड़ सकती है लेकिन जो हाथ उसे पकड़ता है उसे कैसे पकड़ेगी ? ऐसे ही बुद्धि जो भी पकड़ेगी जगत का ही पकड़ेगी, माया का ही पकड़ेगी, वह बुद्धिदाता को नहीं समझ सकती। श्रुति कहती है :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥

'जहाँ से मन के सहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है, उस ब्रह्मानंद को जाननेवाला पुरुष कभी भय को प्राप्त नहीं होता।' (तैत्तिरीयोपनिषद् : २.४.१)

जहाँ वाणी नहीं जा सकती, मन लौटकर आता है, उस परमात्मा में विश्रांति पाकर ब्रह्मवेत्ता अपने आनंदस्वभाव में रमण करते हैं। फिर वे भयभीत नहीं होते। 'मेरा यह चला जायेगा, मैं मर जाऊँगा' - ऐसी भ्रांति उनको कभी नहीं होती। वे समझते हैं, 'जिसका जन्म व मौत होती है तथा जो बीमार होता है वह शरीर मैं नहीं हूँ, जो चिंता करता है वह मन मैं नहीं हूँ, जो राग-द्वेष रखती है वह बुद्धि मैं नहीं हूँ।' उनको अपने शुद्ध 'मैं' का पता होता है।

उच्चस्तरीय ज्ञान को आत्मसात् करने के संबंध में सभी शिष्य एक जैसे नहीं होते। सम्प्रेषण के प्रति उनकी प्रतिक्रिया उनकी अवस्था के अनुसार होती है। एक-दूसरे से संबद्ध दो व्यक्तियों के बीच संचार और सम्प्रेषण निरंतर चलता रहता है। वास्तव में ब्रह्मांडीय स्तर पर तो प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार एक माला के सभी दाने एक ही धागे से आपस में जुड़े रहते हैं, ठीक उसी प्रकार संसार की, सृष्टि की समस्त वस्तुएँ अंतर्संबंधित होती हैं। दो मित्र हैं। एक के मन में दूसरे के प्रति बुरे विचार आये तो दूसरे को भी उसके प्रति वैसे ही विचार आ जायेंगे। आपके मन में किसीके प्रति स्नेह है तो आप उससे कैसा भी व्यवहार कर लेते हैं। अंदर के भाव बढ़िया होने से उसको कोई आपत्ति नहीं होती पर आपके मन में उसके प्रति द्वेष है तो फिर कितना भी सँभल-सँभलकर, मक्खन लगाकर व्यवहार करते हैं तो भी उतना मजा, उतनी निर्भीकता और सहजता उसको भी महसूस नहीं होती, आपको भी नहीं होती बिल्कुल अनुभूत बात है। इस प्रकार व्यावहारिक स्तर पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भी वैचारिक एवं भावनात्मक सम्प्रेषण चलता रहता है परंतु आध्यात्मिक सम्प्रेषण सामर्थ्य, शांति, आत्मिक आनंद एवं दैवी सम्पदा के सद्गुणों का अति शीघ्र गति से एवं प्रभावोत्पादक ढंग से संचार करने में सक्षम होने से सदैव आकर्षण का विषय रहा है।

आध्यात्मिक सम्प्रेषण के दौरान कभी-कभी ऐसा होता है कि गुरु की तरफ से तो एक ही प्रकार का सम्प्रेषण होता है लेकिन अलग-अलग शिष्यों में अलग-अलग मुद्राएँ, अलग-अलग क्रियाएँ होती हैं, अलग-अलग भाव उदित होते हैं क्योंकि वे अंदर अलग-अलग स्तर पर होते हैं। ऐसा जरूरी नहीं कि गुरु की सम्प्रेषण-शक्ति बरसे और सभी चुप-समाधि में आ जायें, नहीं। कोई हँसता है, कोई रोता है, कोई चुप रहता है... अंदर के स्तर अलग-अलग हैं तो बाहर क्रियाएँ अलग-अलग दिखती हैं। (क्रमशः) ❐

इन्द्रियगत और बुद्धिगत ज्ञान

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

एक होता है इन्द्रियगत ज्ञान। यह आँख, कान, नाक आदि से होता है। इन्द्रियगत ज्ञान का आदर करने से पाप बढ़ जाते हैं। आँख किसी स्त्री या पुरुष को, किसी चीज को देखती है और आकर्षित हो जाती है। आँख बोलती है : ''फिल्म में ले चलो।'' नाक बोलती है : ''परफ्यूम सुँघाओ।'' जीभ बोलती है : ''हलवाई की दुकान पर चलो या चाट खाने चलो।'' कान बोलता है : ''जरा संगीत सुनो, मजा आयेगा।'' और स्पर्श-इन्द्रिय बोलती है : ''शादी करके जरा मजा लो।''

ये इन्द्रियाँ जीव को धोखे में डालनेवाली हैं। जो इन्द्रियगत ज्ञान को सच्चा मानते हैं, उनको जगत की वासना खूब होती है। उनका जीवन-निर्णय बहुत तुच्छ होता है - कमाना, खाना, सुविधा भोगना और मौज करना... थोड़ी-सी गर्मी लगी तो एयर कंडीशन चालू हो जाय, जरा-सी ठंड लगी तो रूम हीटर चालू हो जाय, जरा-सी तकलीफ आये तो उसको भगाकर बस सुविधा-सुविधा-सुविधा... ऐसे जो शरीर की सुविधा के पीछे ही अपने ज्ञान को, अपनी समझ को, अपने जीवन को खपाते हैं, ऐसे लोग आत्मा-परमात्मा का स्वाद नहीं ले पाते। जो इन्द्रियगत ज्ञान का अधिक आदर करते हैं, उनका मन विकारों से सम्पन्न होता है। हकीकत में इन्द्रियगत ज्ञान में उलझे हुए व्यक्ति का जीवन मति के निर्णय के अनुसार नहीं होता है।

दूसरा होता है बुद्धिगत ज्ञान। यह परिणाम पर दृष्टि डालने के लिए प्रेरित करता है। बुद्धिगत ज्ञान का जो आदर करते हैं, उनका मन परिणाम को विचारकर विषय-विकारों पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करता है और परमात्मा के ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है।

पशु इन्द्रियगत ज्ञान में ही जीता है इसलिए उसे मुक्ति का अवसर नहीं मिलता है। बकरे ने घास देखी, ललक पड़ा। परिणाम में दुतकार व डंडे लगेंगे इसका उसे पता नहीं लेकिन मनुष्य परिणाम का विचार करके जितना काम करता है उतना ही उत्तम होता है।

इन्द्रियाँ विषय-विकारों में घसीटकर ले जाती हैं और बुद्धि परिणाम का पता देती है। बुद्धिगत ज्ञान और इन्द्रियगत ज्ञान के बीच में रहता है - मन। मन इन्द्रियों के पक्ष में रहेगा तो व्यक्ति की चेष्टा पापमय रहेगी। मन बुद्धि के पक्ष में रहेगा तो व्यक्ति दृढ़निश्चयी होगा, ऊँचा उठेगा, महान आत्मा बनेगा। मन कभी इन्द्रियों के पक्ष में चला जाता है तो कभी बुद्धि के पक्ष में।

महापापी आदमी वह होता है जिसका मन इन्द्रियों के पक्ष में ही रहता है। दूसरा होता है महात्मा, जिसका मन मति के पक्ष में ही रहता है। तीसरा होता है साधारण भक्त, साधारण समाज, जिसका मन कभी तो इन्द्रियों की लपेट में आता है तो कभी बुद्धि का पक्ष लेता है। जब बुद्धि की तरफ देखता है तो सोचता है, 'मुझमें यह गलती है, अभी तो मुझमें बीड़ी पीने की आदत है, ठीक नहीं है लेकिन क्या करूँ ?'

कोई व्यक्ति घर से चला। बाजार में उसने चाट देखी तो मुँह में पानी आ गया। 'घर से दूध पीकर निकले हैं। अभी चाट खायेंगे तो कोढ़ की बीमारी होगी।'- ऐसा सोचकर उसने अपने मन को रोक दिया। यह बुद्धिगत ज्ञान का आदर है। बुद्धिगत ज्ञान से भी परे आत्मज्ञान में जो जगे हैं, उन महापुरुषों के लिखे शास्त्रों व उपदेशों के अनुसार जीवन हो तो आदमी दृढ़व्रती होता है और निष्पाप होकर नारायण का साक्षात्कार कर सकता है। ❒

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

राजा बलि की प्रेम भरी बातें सुनकर प्रह्लादजी ने हँसकर कहा : ''वत्स ! तुमने जो कुछ कहा वह शिष्टाचार की दृष्टि से भले ही ठीक हो किंतु मेरे लिए ठीक नहीं है। मैंने बहुत दिनों तक राज्य किया है । अब मेरी राज्य करने की इच्छा नहीं है । मुझे देवराज इन्द्र के कपट-व्यवहार का कुछ भी ध्यान नहीं है। उन्होंने स्वयं अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँग ली है । मेरे जीवन का लक्ष्य कभी ऐसा नहीं था कि किसीको शत्रु मानकर उससे बदला लेने की इच्छा करूँ । फिर अब तो मेरी दृष्टि में तुम और सुरराज दोनों ही समान हो । दोनों पर मेरा समान प्रेम है । अतएव तुम राज्य करो किंतु चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के पालन के साथ राज्य करो और राजमद से सदा विरक्त रहो । भगवान तुम्हारा मंगल करेंगे ।''

इसी बीच महर्षि शुक्राचार्यजी भी वहाँ जा पहुँचे । उनके अनुरोध से प्रह्लादजी ने राजा बलि को राजधर्म का समुचित उपदेश दिया । प्रह्लादजी ने जो कुछ कहा उसका सारांश यही था कि 'धर्मानुकूल धनोपार्जन करना ही राजा का कर्तव्य है । राजा, राजपरिवार व राजवंशज को चाहिए कि प्रतिदिन विपत्तिग्रस्तों, मित्रों, वृद्धों, गुणवानों, ब्राह्मणों और सत्पुरुषों का आदर-सत्कार व भरण-पोषण करे तथा यथोचित रक्षण करे। लोक और परलोक दोनों में यही कार्य सबसे अधिक कल्याणकारक है । राजा को चाहिए कि धर्मानुसार चारों वर्णों और आश्रमों का यथोचित पालन करे, वर्णविप्लव एवं आश्रमविप्लव न होने दे ।

राजा का परम धर्म है प्रजारंजन । अतएव प्रजा में संतोष बना रहे, राजभक्ति बनी रहे तथा राजा-प्रजा के बीच अच्छा संबंध बना रहे, इसके लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।'

इस उपदेश को पाकर राजा बलि कृतार्थ हो गये । राजा बलि से विदा हो प्रह्लादजी पुनः अपनी तपोभूमि को गये और वहीं भगवद्-चिंतन में निमग्न हो गये । स्वर्ग में प्रह्लादजी की प्रशंसा होने लगी ।

जब देवराज इन्द्र के शाप का समय व्यतीत हो गया, तब धीरे-धीरे उनका प्रताप बढ़ने लगा और दैत्यों का बल घटने लगा । राजा बलि के राज्य में अपशकुन होने लगे, जिससे वे बड़े चिंतित हुए । चिंताग्रस्त राजा बलि एक दिन अपने पितामह की सेवा में तपोभूमि में जा पहुँचे। राजा बलि ने जाकर साष्टांग प्रणाम किया । प्रह्लादजी द्वारा कुशल-क्षेम पूछने पर हाथ जोड़कर घबराये हुए चित्त से कहा : ''पूज्य पितामह ! मुझे आजकल बुरे-बुरे स्वप्न आ रहे हैं और देश में चारों ओर भाँति-भाँति के आंतरिक्ष तथा भौतिक अपशकुन व उत्पात हो रहे हैं । इतना ही नहीं, हर तरह से देवताओं का प्रभुत्व बढ़ रहा है । दैत्यों का पराक्रम धीरे-धीरे घट रहा है । इन सबका कारण मेरी समझ में नहीं आता । मुझे बड़ी चिंता हो रही है । अतएव मैं आपकी सेवा में आया हूँ । आप अपने योगबल से इन अपशकुनों के कारणों को अवश्य ही जानते होंगे, अतः मुझे बतलाने की कृपा करें ।''

प्रह्लादजी ने अपने योगबल से वर्तमान और भविष्य की सारी स्थिति जानकर कहा : ''हे बलि ! इस समय देवताओं की उन्नति और दैत्यों की अवनति के कारण तुम ही हो । तुमने तीनों लोकों को जीतकर समस्त देवताओं को उनके पदों से च्युत करके स्वयं उनके अधिकारों पर

आधिपत्य जमा लिया है। इसी कारण देवता दुःखी होकर भगवान की शरण में गये थे। भक्तवत्सल भगवान ने उनकी विपदा सुनकर उनकी रक्षा के लिए अदिति के गर्भ से अवतार लेने का निश्चय किया है। वे 'वामन' रूप से अवतार लेकर देवताओं के अधिकारों की रक्षा करेंगे, जिससे दैत्यों को अपनी करनी का फल मिलेगा। इसी भावी के संकेतरूप में तुम्हें बुरे स्वप्न आने लगे हैं और तुम्हारे साम्राज्य में अपशकुन व उत्पात होने लगे हैं। अभी समय है, तुम सावधान होकर दैत्यों की रक्षा का उपाय कर सकते हो।''

दैत्यराज बलि प्रह्लादजी की स्पष्ट बातों को सुनकर उत्तेजित हो गये। भावीवश उनकी बुद्धि नष्ट हो रही थी। उन्होंने क्रोध के आवेश में कहा : ''हे पितामह ! आप कैसी बातें कर रहे हैं ? यदि देवताओं की रक्षा करने में विष्णु समर्थ होते तो अब तक वे क्यों चुप रहते ? न जाने कितनी बार हमारे असुर वीरों ने देवताओं को सताया है और उनसे अपने जातिगत वैर का बदला लिया है परंतु न कहीं विष्णु आये, न ब्रह्मा। अब इस बार विष्णु आयेंगे तो आयें। उनको भी अपने देव-पक्षपात का फल मिल जायेगा। मैं इसके लिए जरा भी चिंतित नहीं हूँ।''

(कैसी बुद्धि हो रही है! **विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।** - पूज्य बापूजी) **(क्रमशः)**

(पृष्ठ ७ का शेष)

तुझमें राम मुझमें राम, तुझमें ॐ मुझमें ॐ,
सबमें ॐ समाया है।
कर लो सभीसे स्नेह जगत में कोई नहीं पराया है॥

इस ज्ञान का आदर होने पर सारे विश्व में सुख और शांति होगी। इस ज्ञान से जितना अलग हटते हैं उतनी ही अशांति होती है। अपना बाहर का अहं मिटाकर वास्तविक 'मैं' में शांत होना और उसका महत्त्व समझना सारी समस्याओं का समाधान है। ॐ... ॐ... ॐ...

ब्रह्मचर्यविरोधी दलीलों का निराकरण

'आहार की तरह कामवासना भी जन्म से प्राप्त होने से स्वाभाविक रूप से वह एक प्राकृतिक माँग है। इससे ब्रह्मचर्य की बात अस्वाभाविक है, नुकसानकर्ता है।' - यह तर्क योग्य, स्वाभाविक व सापेक्ष नहीं है क्योंकि आहार और कामवासना जन्मजात होने पर भी दोनों में मूलभूत अंतर है। आहार तो शरीर को पोषण देता है। उसके बिना जीना असंभव हो जाता है जबकि कामवासना के पोषण के सिवाय हम जी ही नहीं सकते ऐसा नहीं है। इसके विपरीत कामवासना नियंत्रित करने पर सर्वांगीण आरोग्य, विलक्षण मानसिक और बौद्धिक लाभ प्राप्त होता है।

आइन्स्टाईन के वर्षों के ब्रह्मचर्य ने ही तो उसको प्रसिद्ध कराया। रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि, स्वामी विवेकानंद और लीलाशाहजी बापू आदि को ब्रह्मचर्य एवं संयम ने ही सर्वश्रेष्ठ आत्मानुभव में प्रतिष्ठित किया, जगजाहिर है। मीराबाई का संयम उनको जीवन के सर्वोपरि शिखर पर पहुँचाने में सहायक हुआ कि नहीं ? विलासी मनोवृत्ति का सोचना भ्रामक है। कामविकार में गिरनेवालों को कराहने के सिवाय क्या मिलता है ? समझ लीजिये भैया ! फिर न रोना, फिर न सिसकना; संयम सीख संयम।

एक दृष्टि से जगत दुःखालय कहलाता है। इसमें दुःख स्वाभाविक माना जाता है। फिर भी दुःख से मुक्त होने के लिए यत्न नहीं करना चाहिए ऐसा कोई नहीं कहता। ऐसे ही कामवासना को स्वाभाविक बतलानेवाले भी उससे मुक्त होने के लिए यत्न नहीं करना चाहिए, ऐसा नहीं कह सकते।

धर्मशास्त्र धार्मिक क्रियाओं में शौच, लघुशंका, छींक, खाँसी जैसे प्राकृतिक वेगों का निराकरण करने की अनुमति देते हैं, जिससे देह का आरोग्य बना रहे परंतु कामवासना के आवेग की पूर्ति करने की अनुमति नहीं देते। यदि वासना प्राकृतिक वेग होती या उसको न भोगने पर शरीर की कोई हानि हो जाती तो धर्म ने उसके लिए अवश्य छूट दी होती। स्पष्ट है कि धर्म कामवासना को प्राकृतिक वेग या स्वाभाविक नहीं मानता।

वैसे तो क्रोध भी एक स्वाभाविक आवेग है। जीवनशास्त्र की दृष्टि से या अन्य किसी भी तरह क्रोध के आवेग के क्षणों में किसीका खून कर डालना जैसे स्वाभाविक या उचित नहीं माना जाता, उसी तरह काम के आवेग के वश में होकर अपने व दूसरे के शरीर का बल-तेज नष्ट करना भी स्वाभाविक या उचित नहीं माना जा सकता।

एक तर्क यह भी दिया जाता है कि सभी यदि ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे तो प्रजातन्तु आगे नहीं बढ़ेगा, कालान्तर में सृष्टि का अंत आ जायेगा। अतः ब्रह्मचर्य-पालन करना सृष्टिकर्ता के संसार चलाने के हेतु के विरुद्ध व्यवहार करना है।

ऐसा तर्क करनेवाले ईमानदारी से तर्क करते होंगे परंतु उसमें वे स्वयं को जाने-अनजाने में धोखा दे रहे हैं। अपने कर्तव्यपालन से छूटने के लिए मन इधर-उधर की शुभ दलीलों द्वारा सज्जन व्यक्ति को श्रेय-मार्ग में जाने से रोक लेता है। सज्जन अशुभ तर्क के सामने तो टिक सकता है परंतु अशुभ जब शुभ के स्वाँग में आ जाता है तब वह धोखा खा जाता है। ब्रह्मचर्य के विरुद्ध यह दलील भी ऐसी ही अशुभ, मायावी या शैतानी है।

ब्रह्मचर्य के विरुद्ध ऐसी दलील मन में आये तब व्यक्ति को विचार करना चाहिए कि 'जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्या हम सब इस तरह से सोचते हैं ? आयकर (इनकम टैक्स) के सही आँकड़ों को छुपाकर क्या लोग कम कर नहीं भरते ? तब मन में क्या यह विचार आता है कि यदि सभी ऐसा करेंगे तो कम कर मिलने पर सरकार राज्य कैसे चलायेगी ? क्या कभी कतार तोड़कर बस में नहीं घुसते ? तब क्या यह सोचते हैं कि यदि सभी ऐसा करेंगे तो नागरिक-अनुशासन का क्या होगा ? अर्थात् जब व्यक्ति का कोई निजी स्वार्थ होता है तब वह दूसरों का ख्याल करना भूल जाता है और स्वयं के लिए त्याग का समय आने पर दुनिया की चिंता के बहाने कर्तव्य से विमुख बन जाता है; उसी बीरबलवाली घटना की तरह जिसमें नगर के सभी लोगों को बादशाह के आदेश से एक लोटा दूध खाली हौज में डालना था परंतु हौज भरा तो पानी से ही। क्योंकि सभीने यही सोचा कि 'यदि मैं अकेला ही पानी भरा लोटा डालूँगा तो उससे क्या फर्क पड़ जायेगा ?' यह क्यों नहीं सोचा कि 'सभी पानी डालेंगे तो हौज में दूध कहाँ से आयेगा ?'

हौज में एक लोटा पानी डालते समय व्यक्ति यही सोचता है कि 'मैं अकेला पानी डालूँगा तो हौज दूधरहित नहीं बन जायेगा' तो फिर यह क्यों नहीं सोचता कि 'मेरे अकेले के ब्रह्मचर्य-पालन से दुनिया मानवरहित नहीं हो जायेगी।'

दुनिया की चिंता करने की दलील हृदयपूर्वक की गयी दलील हो तो फिर प्रत्येक क्षेत्र में जगत के हित का ख्याल रखकर व्यक्ति व्यवहार करेगा। वास्तव में ऐसे, सबके हित में रत समझदार व्यक्ति के मन में ब्रह्मचर्य के विरुद्ध ऐसी वाहियात दलील उत्पन्न ही नहीं होती। ❐

'लहर नहीं जहर हूँ मैं...'

पेप्सी बोली कोका कोला !
भारत का इन्सान है भोला ।
विदेश से मैं आयी हूँ,
साथ मौत को लायी हूँ ।

लहर नहीं जहर हूँ मैं,
गुर्दों पर बढ़ता कहर हूँ मैं।
मेरी पीएच दो पॉइन्ट सात,
मुझमें गिरकर गल जायें दाँत।

जिंक आर्सेनिक लेड हूँ मैं,
काटे आँतों को वो ब्लेड हूँ मैं ।
मुझसे बढ़ती एसिडिटी,
फिर क्यों पीते भैया-दीदी ?

ऐसी मेरी कहानी है,
मुझसे अच्छा तो पानी है ।
दूध दवा है, दूध दुआ है,
मैं जहरीला पानी हूँ।

हाँ, दूध मुझसे सस्ता है,
फिर पीकर मुझको क्यों मरता है ?
५४० करोड़ कमाती हूँ,
विदेश में ले जाती हूँ।

शिव ने भी ना जहर उतारा,
कभी अपने कण्ठ के नीचे।
तुम मूर्ख नादान हो यारो !
पड़े हुए हो मेरे पीछे।

देखो इन्सां लालच में अंधा,
बना लिया है मुझको धंधा ।
मैं पहुँची हूँ आज वहाँ पर,
पीने का नहीं पानी जहाँ पर ।

छोड़ो नकल अब अकल से जीयो,
जो कुछ पीना सँभल के पीयो ।
इतना रखना अब तुम ध्यान,
घर आयें जब मेहमान ।

इतनी तो तुम रस्म निभाना,
उनको भी कुछ कसम दिलाना ।
दूध जूस गाजर रस पीना,
डालकर छाछ में जीरा पुदीना ।

अनन्नास आम का अमृत,
बेदाना बेलफल का शरबत।
स्वास्थ्यवर्धक नींबू का पानी,
जिसका नहीं है कोई सानी ।

तुम भी पीना और पिलाना,
पेप्सी नहीं अब घर में लाना ।
अब तो समझो मेरे बाप,
मेरे बचे स्टॉक से करो टॉयलेट साफ ।

नहीं तो होगा वो अंजाम,
कर दूँगी मैं काम तमाम ।

– गिरीश कुमार जोशी, उदयपुर (राज.)।

(इसको हर कोई छपा सकता है ।)

नेत्र व कर्ण सुरक्षा

चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।
ततः श्लेष्महरं कर्म हितं दृष्टेः प्रसादनम् ॥

'नेत्र तेजस्वरूप है। अतः उसे कफ से विशेष भय रहता है। इसलिए कफनाशक कर्म नेत्र का प्रसादन (शुद्धि) करने में हितकारी होते हैं।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थान : ५.१६)

नेत्ररक्षक प्रयोग :

(१) अंजन करने से नेत्र सुंदर तथा दृष्टि सूक्ष्म व स्वच्छ बनती है। वृद्धावस्था तक नेत्र कार्यक्षम रहते हैं। सुरमे को खरल में पीस के भाँगरा व नींबू के रस में घोंटकर सुखा के बनाया गया अंजन नेत्रों के लिए आशीर्वादस्वरूप है।

(२) गाय के घी व शहद के साथ त्रिफला चूर्ण का नित्य सेवन आँखों के लिए अत्यंत हितकर है। **(शार्ङ्गधर संहिता)**

(३) पैरों के तलुओं की घी से नियमित मालिश करने से नेत्र-तृप्ति होकर दृष्टि सतेज रहती है। यह सरल प्रयोग आँखों के लिए खूब लाभकारी है।

(४) रात को सोने से पूर्व भ्रूमध्य (दोनों भौंहों के मध्य) में अरंडी का तेल मलने से नेत्रज्योति में वृद्धि होती है।

(५) भोजन के बाद हथेलियों को परस्पर रगड़कर आँखों पर रखने से आँखों को विश्राम मिलता है।

(६) दिन में २-३ बार मुँह में पानी भरकर आँखों पर स्वच्छ, शीतल जल के छींटे मारना आँखों के लिए आह्लाददायक है।

आँखों के लिए हितकर आहार :

शहद, गाय का दूध व घी, जीवंती (डोडी), अंगूर, केला, संतरा, पुनर्नवा, पालक, सेंधा नमक, हरा धनिया, सौंफ, बादाम व गोमूत्र नेत्रों के लिए हितकर हैं।

अहितकर आहार :

अंकुरित अनाज, तरबूज, ताड़फल, सादा नमक तथा आम का अधिक सेवन, देर रात का भोजन, अधिक जलपान एवं उष्ण-तीक्ष्ण-अम्ल-विदाही पदार्थों का सेवन हानिकारक है।

हितकर विहार :

प्रातः सूर्योदय के समय बगीचे की हरी घास पर घूमना, शीर्षासन, सूर्यनमस्कार, त्राटक व प्रतिदिन प्रातःकाल जलनेति करना खूब लाभदायी है।

अहितकर विहार :

सूर्योदय के बाद व दिन में सोना, रात्रि-जागरण व रात्रि-स्नान, धूल, धुआँ, तेज धूप, सूर्यावलोकन, नंगे पैर घूमना, टीवी., चमकीले व अति सूक्ष्म पदार्थों को देखना तथा तेज वायु का सेवन आँखों के लिए हानिकारक है।

कर्ण-सुरक्षा

कान वायु का स्थान है। यहाँ की वायु के शमनार्थ कानों में प्रतिदिन तेल डालना चाहिए। इसके लिए सरसों का तेल उत्तम है। तेल डालने के बाद कान के मूल में धीरे-धीरे मालिश करें। इससे कानों की उच्च श्रवण, बहरेपन व अन्य रोगों से सुरक्षा होती है।

ऊँची आवाज, तेज व ठंडी हवा तथा पानी से कानों को बचाना चाहिए। ❑

✻ विविध भोग संसाररूपी रोग के हेतु हैं।
✻ शांति के तुल्य और सुख नहीं है।

संत च्यवनप्राश (केसरयुक्त)

शरद पूर्णिमा के बाद परिपक्व हुए आँवलों से आश्रम के पवित्र वातावरण में शुचिता व मंत्रोच्चार के साथ इस रसायन का निर्माण किया गया है।

स्वर्ण, चाँदी, ताम्र व लौह सिद्ध जल में उबले हुए वीर्यवान आँवलों में ५६ बहुमूल्य जड़ी-बूटियों के साथ चाँदी, लौह, बंग व अभ्रक भस्म एवं शुद्ध केसर मिलाकर गाय के घी में यह कल्प बनाया गया है। शरीर व बुद्धि के सर्वांगीण विकास के लिए यह परिपूर्ण है।

यह शरीरस्थ कोशिकाओं (cells) का नवनिर्माण करता है व पाचन-श्वसन-रक्ताभिसरण आदि समस्त प्रणालियों को कार्यशील बनाता है, जिससे वार्धक्य दूर होकर चिरयौवन व दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।

इसमें प्रयुक्त चाँदी मस्तिष्क व स्नायुओं के लिए बल्य, लौह रक्तवर्धक, बंग वीर्यवर्धक व वंध्यत्वनाशक तथा अभ्रक देह को दृढ़ व युवावस्था को स्थिर करनेवाला है। केसर सौंदर्य, तेज व कांति वर्धक तथा वायुनाशक है। इन शक्तिशाली खनिज द्रव्यों व नैसर्गिक जीवनीय तत्त्वों से भरपूर होने के कारण इसके सेवन से शरीर की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। प्रतिभा, ओज, वीर्य, उत्साह व प्रसन्नता में वृद्धि होती है। शरीर में स्फूर्ति व नवचेतनता आती है। च्यवनऋषि इसका सेवन कर पुनः युवावस्था को प्राप्त हुए थे। स्वस्थ-रुग्ण, युवा-वृद्ध, दुर्बल, स्त्री-संभोग से क्षीण सभी लोग वर्ष भर इसका सेवन कर स्वास्थ्य व दीर्घायु प्राप्त कर सकते हैं। ❒

सौभाग्य-शुंठी पाक

इस पाक के लाभादि का वर्णन भगवान महादेव ने माता पार्वती के समक्ष किया था। नारदजी ने इसे ब्रह्माजी के श्रीमुख से सुना था और अश्विनीकुमारों ने इस पाक का निर्माण किया था।

इस पाक के सेवन से बल, कांति, बुद्धि, स्मृति, उत्तम वाणी, सौंदर्य, सुकुमारता तथा सौभाग्य की प्राप्ति होती है। प्रसूति के बाद माताओं को यह पाक देने से योनि-शैथिल्य दूर होता है, दूध खुलकर आता है। इसके सेवन से ८० प्रकार के वातरोग, ३२ प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकार के कफरोग, ८ प्रकार के ज्वर, १८ प्रकार के मूत्ररोग, ३४ प्रकार के नासिका-रोग एवं नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, मस्तिष्क के रोग, बस्तिशूल व योनिशूल नष्ट हो जाते हैं। सर्दियों में इस दैवी पाक का विधिवत् सेवन कर सभी नीरोगता और दीर्घायुष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। इसका सेवन 'वसंत पंचमी' तक किया जा सकता है। इसका मात्र एक दिन सेवन करने से पूज्य बापूजी को इसकी गुणवत्ता का अनुभव हुआ और उन्होंने इसे प्रभावशाली घोषित किया। (इसे अपने घर में बना सकते हैं अथवा आश्रम व समिति के सेवाकेन्द्रों से भी प्राप्त कर सकते हैं।) ❒

मोबाइल पर कीर्तन, भजन व शुभ संदेश

✲ अपने मोबाइल पर फोन करनेवालों को सुनाइये पूज्य बापूजी के कीर्तन एवं भजन (कॉलर ट्यून्स)। टाइप करें "BAPU" और 53131 पर एस.एम.एस. करें।

✲ पूज्य बापूजी का शुभ संदेश एस.एम.एस. द्वारा प्राप्त करने हेतु "OM" टाइप करके 53131 पर एस.एम.एस. करें। (रिलायन्स पर प्रतिदिन शुभ संदेश प्राप्त करने के लिए "SUB ASA" टाइप करके 53131 पर एस.एम.एस. करें।)

यह सुविधा एयरटेल, रिलायन्स, आइडिया, टाटा, वोडाफोन एवं स्पाईस पर उपलब्ध है।

नोट : वर्तमान में कॉलर ट्यून और शुभ संदेश अपलोड हो चुके हैं। मोबाइल पर डाउनलोड करने के लिए पूज्यश्री के श्रीचित्र और रिंगटोन थोड़े दिनों के बाद शुरू होंगे।

सं|स्था||स|मा|चा|र

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

सुसनेर (म.प्र.) समिति द्वारा पूज्य बापूजी का सत्संग पाने हेतु पिछले १४ वर्षों से जारी तपस्या का सुफल उन्हें तब प्राप्त हुआ जब उन्हें ८ व ९ दिसम्बर के सत्संग-कार्यक्रम की तारीख मिली।

जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियों के बीच पहुँच जाते तो वे सब अपने शरीर की सुध-बुध खो बैठते थे, ऐसे ही भक्तवृंद अपने आराध्य पूज्य बापूजी को अपने बीच पाकर देहभान भूल गये। उनके नेत्ररूपी सीपों में अश्रुरूपी मोती चमक रहे थे।

स्थानीय जनों के लिए यहाँ की गौशाला में बनी कुटिया में ब्रह्मस्वरूप साँईं आसारामजी का आगमन शबरी की बनायी छोटी-सी कुटिया में प्रभु श्रीरामजी के आगमन के समान महा आनंद का अवसर रहा। प्रतीक्षापूर्ति के आनंद से सराबोर हो वे अपने दिल के देवता की एक झलक पाने के लिए हर संभव कोशिश कर रहे थे।

उनकी प्रेमाभक्ति को देख प्रसन्न हुए पूज्य बापूजी ने उन्हें भक्ति में चार चाँद लगाने के गुर बताये : ''भक्ति के बाद अंतर में विश्राम नहीं पाने से, मनन न करने से भक्ति गहरी नहीं होती। भक्ति का फल प्राप्त करना हो तो पूजा-पाठ, जप-ध्यान करने के बाद कुछ समय शांत बैठकर अंतर में विश्रांति पानी चाहिए, अपने निःसंकल्प नारायणस्वरूप में विश्राम पाना चाहिए।''

यहाँ के अभावग्रस्तों को मदद का हाथ मिले, इस उद्देश्य से पूज्य बापूजी ने प्रतिवर्ष यहाँ भंडारे (भोजन-प्रसाद वितरण) का आयोजन करने की आज्ञा दी।

रास्ते में **उज्जैन** (म.प्र.) से ६० कि.मी. दूरी पर स्थित **आगर मालवा (म.प्र.)** के साधकों ने पूज्यश्री से प्रार्थना की कि वे बैजनाथ भगवान की इस पुण्यनगरी में पधारकर भक्तजनों को सत्संग-अमृत का लाभ दें। करुणा-सागर पूज्य बापूजी ने उनकी अभिलाषा पूरी की।

छिंदवाड़ा (म.प्र.) में १५ व १६ दिसम्बर के दो दिवसीय ज्ञानयज्ञ में पूज्य बापूजी के आत्मानुभवस्पर्शी वचनामृत का पान करने आये श्रद्धालुओं ने दो लाख की क्षमतावाले इस शहर का सबसे बड़ा मैदान भी छोटा बना दिया। क्यों न बनायें, जब आनंदघन संतश्री के चैतन्यमय दरबार में सदा ही दीवाली मनती रहती है और आठों पहर आनंद में निमग्न रहने की कुंजी भी मिल जाती है !

पूज्य बापूजी के वचनामृत में आया : ''सत्संग और संतकृपा से तुच्छ जीव को भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है। महर्षि वेदव्यासजी की आज्ञा से नाली के एक कीड़े ने मृत्यु का आलिंगन किया और उनकी कृपा से वह नये जन्म में पुराणों में सुप्रसिद्ध महर्षि मैत्रेय बनकर पूजित, सम्मानित हुआ। कहाँ तो पनाली का कीड़ा और कहाँ विकास की पराकाष्ठा, प्रभुप्राप्ति, प्रभुतत्त्व का पूर्ण ज्ञान।''

पूज्यश्री ने सत्संग में मानव-जीवन के बहुआयामी विकास हेतु आवश्यक शरीर-स्वास्थ्य से लेकर आत्मविश्रांति तक के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला। पूज्यश्री ने साधकों को जहाँ आदर-अनादर, निंदा-स्तुति में सम रहने के गुर बताये, वहीं सप्तधान्य उबटन बनाने की विधि भी समझायी।

लोकसंत गरीबनिवाज पूज्य बापूजी गन्ना उपज बेचने की किसानों की समस्या सुनकर व्यथित हुए। उन्होंने यह भी सुना कि पिछले कुछ वर्षों से यहाँ गन्ना जलाने की नौबत आ गयी थी। इन समस्याओं पर अपनी संवेदनशीलता व्यक्त करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिले में नयी शूगर मिल लगवायी जानी चाहिए और गुड़ उद्योग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे किसानों का मनोबल बना रहे।''

पूज्य बापूजी ने घर में तुलसी का पौधा रोपित करने और एक पीपल लगाने से १० अन्य वृक्षों की शुद्ध हवा का लाभ बताया।

'संत श्री आसारामजी गुरुकुल, छिंदवाड़ा' के छात्र-छात्राओं ने यहाँ अनेक मनोवेधक सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं योगासन प्रस्तुत किये, जिन्हें देखकर

सभी मंत्रमुग्ध हुए। 'व्यक्तित्व विकास परीक्षा' में प्रथम व द्वितीय स्थान पानेवाले विद्यार्थियों को पूज्य बापूजी के करकमलों से पुरस्कार प्राप्त हुए।

पूज्य बापूजी **यवतमाल (महा.)** मार्ग से बैतूल जायेंगे, यह जानकारी प्राप्त होते ही यवतमाल समिति ने अपनी क्षेत्रीय जनता को भी सत्संग का लाभ मिले इस उद्देश्य से पूज्य बापूजी को प्रार्थना की। विनती स्वीकार होते ही अत्यंत कम समय में यवतमाल के पोस्टल मैदान पर सत्संग मंडप खड़ा किया गया । पूज्य बापूजी के १७ दिसम्बर के आगमन की वार्ता वायु-वेग से विदर्भ क्षेत्र के कोने-कोने तक पहुँची और श्रद्धालुओं के समूह सत्संग मंडप की ओर इस प्रकार गतिशील हो गये, मानों श्रद्धा की सरिताएँ अपने प्राणप्रिय ज्ञानसिंधु से एकाकार होने उमड़ पड़ी हों ।

पूज्यश्री ने वास्तविक संपदा पर प्रकाश डाला : ''शरीर व मन सुदृढ़ रखने के लिए शुद्ध हवा, पौष्टिक आहार व आध्यात्मिक विचार आवश्यक हैं ... सच्ची संपत्ति है ।''

सत्संग में जनसैलाब उमड़ता गया, पंडाल बढ़ता गया, आखिर चहुँओर कनातें और परदे खुलवाने का आदेश देते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : **''परदा नहीं जब खुदा से तो बापू से परदा क्या ?''**

वहाँ से परदा हटा दिया गया और फिर संत-भगवंत एवं साधक-सत्संगियों के बीच मधुर लीलाओं व श्रद्धापूरित भावों के आदान-प्रदान का खेल चलता रहा । यवतमाल के साथ यवतमाल-नागपुर मार्ग पर स्थित बेलोना गाँव की भूमि भी पूज्यश्री के पावन पादस्पर्श से पावन हुई । यहाँ नवनिर्मित आश्रम का उद्‌घाटन पूज्यश्री के पावन करकमलों से संपन्न हुआ ।

बैतूल (म.प्र.) में १८ व १९ दिसम्बर को सत्संग समारोह आयोजित हुआ । यहाँ पूज्यश्री ने जीवन में पुरुषार्थ की महत्ता का प्रतिपादन किया : ''सदाचार और शास्त्रसम्मत पुरुषार्थ से अपनी सफलता का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए । सफलतारूपी लक्ष्मी हमेशा पुरुषार्थी व्यक्ति का ही वरण करती है।

आलस्य, प्रमाद या पलायनवादिता को झाड़ फेंकें। पुरुषार्थ परमदेव है। बीते हुए कल का पुरुषार्थ आज का प्रारब्ध है । सफलता मिलने पर उसका गर्व नहीं करना चाहिए और विफलता में विषादयुक्त न होकर समता व धैर्य से पुनः सावधानीपूर्वक विकट प्रयत्न करना चाहिए ।''

सत्‌शास्त्र और सदाचार अनुरूप पुरुषार्थ के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर पूज्य बापूजी ने प्रकाश डाला ।

२२ दिसम्बर की शाम से २५ दिसम्बर तक तापी के तट पर **सूरत (गुज.)** में सहज सत्संग साधना समारोह व पूनम दर्शन संपन्न हुआ। नासिक (महा.) व आस-पास से कई समितियाँ यहाँ पैदल आयी थीं। कोई सूरत से २५० कि.मी. तो कोई ३०० कि.मी. दूर से आये सैकड़ों-सैकड़ों पैदलयात्रियों की तपस्या से पूज्यश्री का दिल पसीजा । **६ से ९ मार्च 'महाशिवरात्रि सत्संग साधना शिविर' नासिक (महाराष्ट्र) वालों की झोली में आया ।** प्रेमाभक्ति के पंख लगे चित्तों से ज्ञानगगन में उड़ान भरायी अलख के औलिया पूज्य बापूजी ने । सारतत्त्व में, सारस्वरूप परमात्मा में सहज विश्रांति और प्रेमस्वरूप प्रभु का सहज ज्ञान-प्रकाश सुनते-देखते ही बनता था । पूनम व्रतधारियों को पंचगव्य पान, दूसरे दिन आँवला रसपान, तीसरे दिन भी गौदुग्ध, दही, घी आदि से बना मन और मति को शुद्ध करनेवाला आरोग्यदायी पंचगव्य का जलपान, जो साधारण रोग तो क्या अस्थि तक के रोगों को उखाड़ देने में सक्षम है। वैदिक मंत्र और विधि से पंचगव्य प्रसाद पानेवाले पूर्ण तृप्त और संतुष्ट नजर आये ।

अमदावाद (गुज.) आश्रम में 'उत्तरायण ध्यान योग साधना शिविर' में आश्रम की गायों व अन्य गायों के दूध, दही, गोमय, घी आदि से बना पंचगव्य सभीको पिलाने का पूज्य बापूजी ने आदेश दिया है। १३ से १६ जनवरी तक अमदावाद आश्रम में पंचगव्यसहित ज्ञान और ध्यान पायेंगे प्रभु के प्यारे, बापू के दुलारे । ❐

'अपने दुःख में रोनेवाले मुस्कराना सीख ले, दूसरों के दुःख-दर्द में आँसू बहाना सीख ले। जिंदगी है दो-चार दिन की, तू किसीके काम आना सीख ले।'

गरीब, असहाय, पीड़ितों में अन्न, वस्त्र, कम्बल, मिठाई, दक्षिणा तथा अन्य जरूरी वस्तुओं का वितरण कर मानवमात्र के हृदय में बसे परमेश्वर की सेवा करने की प्रेरणा देता 'संत श्री आसारामजी साधक-परिवार।
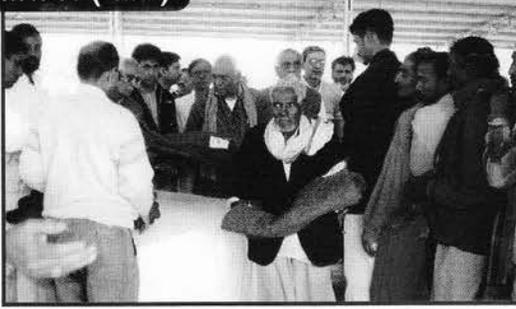
Posting at Rishi Prasad PSO between 1st to 14th of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.
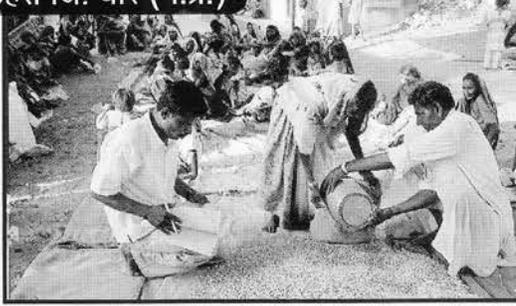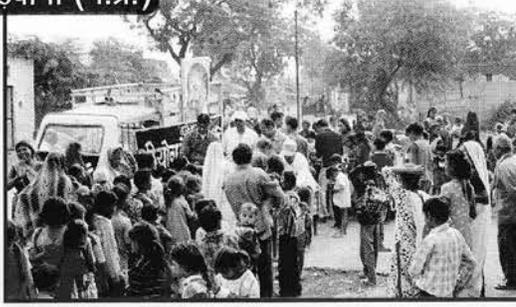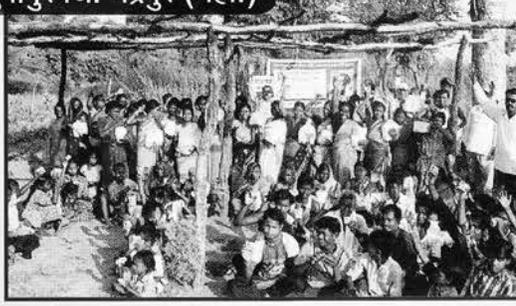
1 January 2008
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006-08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07-08
'D' NO. MH/MR/TECH-47/4/07-08